ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

सितम्बर २०१५ Date of Printing = 05-09-15
प्रकाशन दिनांक= 05-09-15
वर्ष ४४ : अङ्क ११
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : भाद्रपद-आश्विन २०७२
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११६

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

❑ योगेश्वर श्रीकृष्ण का चरित्र.... २
❑ वेदोपदेश ३
❑ योगीराज कृष्ण.... ४
❑ श्रीकृष्ण.... ६
❑ योगेश्वर कृष्णादि ९
❑ आओ, चलें.. ११
❑ परमात्मा गुरुओं का... १५
❑ कालजयी रस..... १७
❑ स्वधा से होता.. २२
❑ छान्दोग्य का प्रथम... २४

सत्यार्थप्रकाश
प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

योगेश्वर श्रीकृष्ण का चरित्र, भागवतादि पुराण और महर्षि दयानन्द

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

श्रीकृष्ण योगेश्वर थे, महात्मा थे, महावीर और धर्मात्मा थे। महाभारत में उनके इसी स्वरूप के दर्शन होते हैं। यद्यपि मध्यकाल में महाभारत में भारी प्रक्षेप हुए हैं परन्तु फिर भी उसमें श्रीकृष्ण जी पर ऐसे घिनौने आरोप नहीं लगाये जैसे भागवत व अन्य पुराणों में लगाये गये हैं। इससे हमारा सनातन वैदिक धर्म बदनाम हुआ और विधर्मियों ने इसका लाभ उठाया। स्थिति यह थी कि वेदों का पठन-पाठन न होने से अज्ञान का सर्वत्र प्रभाव था। स्वार्थी अपने स्वार्थ की सिद्धि में तत्पर थे। उसी की देन यह पुराण ग्रन्थ हैं। सत्य व यथार्थ को विस्मृत कर देने और श्रीकृष्ण जी जैसे महापुरुषों का चरित्र हनन होने से देश व समाज दिन प्रतिदिन पतन की ओर अग्रसर था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में महर्षि दयानन्द जी का आविर्भाव होने पर उन्होंने गुरु विरजानन्द जी से प्राप्त आर्ष दृष्टि से सभी ऐतिहासिक स्थापनाओं की जाँच की। गुरू विरजानन्द जी ने उन्हें बताया था कि जिन ग्रन्थों में पूज्य महापुरुषों की निन्दा आदि हो वह स्वार्थी व अज्ञानी लोगों के बनाये हुए ग्रन्थ होते हैं। पुराणादि ग्रन्थों के रचयिताओं को भाषा का तो ज्ञान था परन्तु वह सत्य ज्ञान व विद्या से कोसों दूर थे। वह हमारे ऋषि-मुनियों के ज्ञान व आचरण के सर्वथा विपरीत दुर्बल विचारों वाले मनुष्य थे। अतः महर्षि दयानन्द ने महाभारत का अध्ययन कर श्रीकृष्ण जी के सत्य चरित को जाना और उसके आधार पर पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण जी के मिथ्या आरोपों का निराकरण करते हुए सत्य वचनों को प्रस्तुत किया। सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में उन्होंने श्रीकृष्ण जी के विषय में जो लिखा है, वह प्रत्येक भारतीय के लिए पठनीय है। उसे प्रस्तुत कर रहे हैं।

महर्षि दयानन्द लिखते हैं- "देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत (ग्रन्थ) में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले (पुराण के रचनाकार ने) ने अनुचित मनमाने दोष (श्रीकृष्ण जी पर) लगाये हैं। (उन पर) दूध, दही मक्खन आदि की चोरी लगाई और कुब्जा दासी से समागम, पर स्त्रियों से रासमंडल क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाये हैं। इसको पढ़-पढ़ा, सुन-सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत (पुराण) न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती?

शिवपुराण में बारह ज्योतिर्लिंग लिखे हैं, उसकी कथा सर्वथा असंभव है, नाम धरा है ज्योतिर्लिंग और जिनमें प्रकाश का लेश भी नहीं। रात्रि को बिना दीप किये (किये) लिंग भी अन्धेरे में नहीं दीखते। यह सब लीला पोप जी की है।

(प्रश्न) जब वेद पढ़ने सामर्थ्य (लोगों में) नहीं रहा, तब स्मृति, जब स्मृति के पढ़ने की बुद्धि नहीं रही, तब शास्त्र, जब शास्त्र पढ़ने का सामर्थ्य न रहा, तब पुराण बनाये, केवल स्त्री और शूद्रों के लिये, क्योंकि इनको वेद पढ़ने-सुनने का अधिकार नहीं है।

(उत्तर) यह बात मिथ्या है, क्योंकि सामर्थ्य पढ़ने-पढ़ाने से होता है और वेद पढ़ने-सुनने का अधिकार सब को है। देखो, गार्गी आदि स्त्रियाँ और छान्दोग्य में जानश्रुति शूद्र ने भी वेद 'रेक्यमुनि' के पास पढ़ा था और यजुर्वेद के २६वें अध्याय मन्त्र २ में स्पष्ट लिखा है कि वेदों के पढ़ने और सुनने का अधिकार मनुष्य मात्र को है। पुनः जो ऐसे ऐसे मिथ्या ग्रन्थ (पुराणादि) बना, लोगों को सत्य ग्रन्थों (वेद, दर्शन व उपनिषद आदि) से विमुख रख जाल में फंसा अपने प्रयोजन को साधते हैं, वे महापापी क्यों नहीं?"

सत्य का ग्रहण एवं असत्य का त्याग ही मनुष्यों का धर्म है। सत्य ही मनुष्यों की उन्नति का प्रमुख

शेष पृष्ठ २७ पर

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश विद्या-व्यवहार में अध्यापक व छात्र परस्पर निष्कपट भाव से विद्या-वृद्धि किया करें और छात्र अध्यापकों की जल, अन्नादि से सेवा किया करें।

प्रजापतिः ऋषिः। सभासदः (अध्यापकाध्येतारः) देवताः। निचृत्पङ्क्तिः छन्दः। पञ्चमः स्वरः।

अथाध्यापकाऽध्येतारः कीदृशः स्युरित्याह।।

अब अध्यापक और छात्र कैसे हों, इस विषय का उपदेश किया जाता है।।

ओ३म् कुविदङ्ग यवमन्तो यव ञ्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय।।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति।।

(यजु० २३। ३८)

पदार्थः **(कुवित्)** बहुविज्ञानयुक्तः **(अङ्ग)** मित्र **(यवमन्तः)** बहुयवादिधान्ययुक्ताः **(यवम्)** धान्यसमूहम् **(चित्)** अपि **(यथा)** **(दान्ति)** छिन्दन्ति **(अनुपूर्वम्)** आनुकूल्यमनतिक्रम्य **(वियूय)** वियोज्ये संमिश्रय च **(इहेह)** अस्मिन्-अस्मिन् व्यवहारे **(एषाम्)** जनानाम् **(कृणुहि)** कुरु **(भोजनानि)** पालनार्थान्यन्नानि **(ये)** **(बर्हिषः)** जलस्य **(नम उक्तिम्)** नमसोऽन्नस्य वचनम् **(यजन्ति)** सङ्गच्छन्ते।।

सपदार्थान्वयः हे **(अङ्गमित्र)! (कुवित्)** बहुविज्ञानयुक्तः त्वम् **(इहेह)** अस्मिन्-अस्मिन् व्यवहारे **(एषाम्)** जनानाम् **(यथा)** **(यवमन्तः)** कृषिवला बहुयवादिधान्ययुक्ताः **(यवम्)** धान्यसमूहम् **(वियूय)** वियोज्य संमिश्रय च **(चिद्)** अपि **(अनुपूर्वम्)** आनुकूल्यपनति क्रम्य **(दान्ति)** छिन्दन्ति **(ये च बर्हिषः)** जलस्य **(नम उक्तिम्)** नमसोऽन्नस्य वचनम् **(यजन्ति)** सङ्गच्छन्ते, तेषाम् **(भोजनानि)** पालनार्था-न्यन्नानि **(कृणुहि)** कुरु।।

भाषार्थ : हे **(अङ्ग)** मित्र! **(कुवित्)** बहुविज्ञान से युक्त तू **(इहेह)** इस विद्याव्यवहार में **(एषाम्)** इन अध्यापक लोगों का जो **(यवमन्तः)** बहुत यव= जौ आदि धान्य से युक्त किसान **(यवम्)** धान्यसमूह को **(वियूय)** पृथक् करके और मिलाकर **(चित्)** भी **(अनुपूर्वम्)** अनुकूलतापूर्वक **(दान्ति)** काटते हैं और **(ये)** जो अध्यापक लोग **(बर्हिषः)** जल एवं (नम उक्तिम्) अन्न=भोजन के वचन को **(यजन्ति)** स्वीकार करते हैं, उनका **(भोजनानि)** भोजन आदि से **(कृणुहि)** सत्कार कर।।

भावार्थ : अत्रोपमालङ्कारः। हे अध्यापकाध्येतारः! यूयं यथा कृषीवलाः परस्परस्य क्षेत्राणि- पर्यायेण लुनन्ति, बुसादिभ्योऽन्नानि पृथक्कृत्य अन्यान् भोजयित्वा स्वयं भुञ्जते, तथैवेह विद्याव्यवहारे निष्कपटतया विद्यार्थिभिरध्यापकानां सेवाम् अध्यापकैः विद्यार्थिनां विद्यावृद्धिं च कृत्वा परस्परान् भोजनादिना सत्कृत्य सर्वं आनन्दन्तु।।

भावार्थ : इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। हे अध्यापक और छात्रो! तुम, जैसे किसान लोग परस्पर के खेतों को पर्याय = बारी-बारी से काटते हैं, बुस=भूसा आदि से अन्नों को पृथक् करके अन्यों को खिलाकर स्वयं खाते हैं, वैसे इस विद्या-व्यवहार में कपटरहित होकर विद्यार्थी लोग अध्यापकों की सेवा करें और अध्यापक लोग विद्यार्थियों की विद्या-वृद्धि करके परस्पर भोजन आदि से सत्कार करके सब आनन्द में रहें।

(''दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर'' से उद्धृत, व्याख्याता स्व० श्री पं० आचार्य सुदर्शनदेव)

योगीराज कृष्ण : एक आदर्श
(धर्मपाल आर्य)

हमारे देश में मनाये जाने वाले पर्वों में जन्माष्टमी का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, मैं इसको प्रेरणापर्व कहूँ तो अप्रासङ्गिक नहीं होगा क्योंकि यह पर्व जिस महापुरुष से सम्बंध रखता है, उस (महापुरुष) का व्यक्तित्व ऐसा है, जो प्राणिमात्र के लिए प्रेरणास्रोत है। जिस महापुरुष की स्मृति में उपरोक्त पर्व को देश में, विदेश में बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है, उस महापुरुष को अनेक नामों से पुकारा जाता है जैसे- गोविन्द, गोपाल, वंशीधर, वासुदेव, नटवर नागर, दामोदर, देवकीनन्दन, वृष्णिनन्दन, वार्ष्णेय, पार्थसारथि, माधव, मधुसूदन आदि। श्रीकृष्ण के उदात्त जीवन पर जब दृष्टि जाती है, तो उनके जीवन के अनेक चारित्रिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, पारिवारिक और राजनीतिक कौशल के प्रसङ्ग सामने आते हैं लेकिन इनके साथ ही एक दुर्भाग्य यह भी है कि समाज का एक वर्ग (पौराणिक) उनको भगवान (ईश्वरावतार) मानकर उनकी पूजा करता है जिसके कारण उनके जीवन के उदात्त पक्ष लुप्त हो जाते हैं। पौराणिक जगत् श्रीकृष्ण के जीवन का आधार पुराणों को मानता है जबकि आर्य समाज उनके जीवन का आधार महाभारत को मानता है। सूरदास के कृष्ण, रसखान के कृष्ण तथा मीरा के कृष्ण भी पौराणिक मान्यताओं के अनुरूप ही हैं। अब प्रश्न ये उठता है कि हम 'कौन से श्रीकृष्ण' को सही मानें, पौराणिक मान्यताओं पर आधारित श्रीकृष्ण को अथवा महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा महाभारत के श्रीकृष्ण को? पुराणों के श्रीकृष्ण के पास सोलह हजार रानियाँ हैं, पुराणों के श्रीकृष्ण गोवर्धन पर्वत को अंगुली पर उठा रहे हैं, पुराणों के श्रीकृष्ण विषयभोग में लिप्त हैं, पुराणों के श्रीकृष्ण गोपिकाओं के चीर चुराने वाले हैं, पुराणों के श्रीकृष्ण भगवान के अवतार हैं, पुराणों के श्रीकृष्णमाखन चोर हैं, पुराणों के श्रीकृष्ण रासलीला रचाने वाले हैं, और पुराणों के श्रीकृष्ण की राधा प्रेमिका है। इसके अतिरिक्त पुराणों के श्रीकृष्ण वे हैं, जो तार्किक और व्यवहार की दृष्टि से एकदम प्रतिकूल हैं, इसके विपरीत महाभारत तथा आर्यजगत् के श्रीकृष्ण योगी हैं, आर्यजगत् के श्रीकृष्ण आध्यात्मिकता के भावों से ओत-प्रोत हैं, आर्यजगत् के श्रीकृष्ण आदर्श पुत्र हैं, आर्यजगत् के श्रीकृष्ण आदर्श मित्र हैं, आर्यजगत् के श्रीकृष्ण आदर्श पति हैं, आर्यजगत् के श्रीकृष्ण आदर्श पिता हैं, आर्यजगत् के श्रीकृष्ण राजा हैं, आर्यजगत् के श्रीकृष्ण आदर्श भ्राता हैं, आर्यजगत् के श्रीकृष्ण आदर्श गृहस्थी हैं तथा आर्यजगत् के श्रीकृष्ण आदर्श योगी हैं, तभी महर्षि दयानन्द को उनके जीवन के विषय में लिखना पड़ा कि "देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्तपुरुषों के सदृश है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी; कुब्जादासी से समागम; परस्त्रियों से रास मण्डल आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाये हैं। इसको पढ़-पढ़ाकर, सुन-सुनाके अन्य मत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों होती?" महर्षि ने श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का हम सबको जो परिचय दिया है, वह उनके विराट् व्यक्तित्व की व्याख्या के लिए पर्याप्त है। पुराणों के कल्पित श्रीकृष्ण समाज को न केवल भ्रमित करने का कार्य कर रहे हैं, पुराणों के कल्पित श्रीकृष्ण महाभारत के श्रीकृष्ण की महिमा और गरिमा को घटाने का कार्य कर रहे हैं। महाभारत

में श्रीकृष्ण को बड़े आदर के साथ सम्बोधित किया गया है। महाभारत में श्रीकृष्ण के गुणों का विस्तार से वर्णन किया गया है। महाभारत के श्रीकृष्ण महर्षि दयानन्द के श्रीकृष्ण हैं महर्षि दयानन्द के श्रीकृष्ण आर्य जगत् के श्रीकृष्ण हैं और आर्य जगत् के श्रीकृष्ण नीतिज्ञ हैं, रीतिज्ञ हैं, वेदज्ञ हैं, गुणवान् हैं, सहनशील हैं, विवेकशील हैं, चिन्तनशील हैं, सदगृहस्थी हैं, सत्यवक्ता हैं, राष्ट्रभक्त हैं, पितृभक्त हैं, सच्चे मित्र हैं, मनोबल और तपोबल के धनी हैं, कर्त्तव्यपरायण हैं, सहनशील हैं, कुलीन हैं, वाक्पटु हैं, कर्त्तव्यपरायण हैं और योगी हैं। पुराणों के श्रीकृष्ण और महाभारत के श्रीकृष्ण में वही अन्तर है, जो अन्तर रात और दिन के बीच है; महाभारत के श्रीकृष्ण और पुराणों के श्रीकृष्ण में जमीन-आसमान का अन्तर है। इसके बावजूद हमारा समाज उपरोक्त अन्तर को या तो जानता नहीं; यदि जानता है तो मानता नहीं तो इससे बड़ी विडम्बना और इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है, मैं नहीं समझता। पुराणों के श्रीकृष्ण योग के नहीं अपितु भोग के प्रेरक हैं। श्रीकृष्ण के जिस उदात्त चरित्र का महाभारत में वर्णन मिलता है, पुराणों ने उनके उस चरित्र को गौण कर दिया है। श्रीकृष्ण के पावन चरित्र से प्रभावित होकर दुर्योधन को भी कहना पड़ा **"त्वञ्च श्रेष्ठतमो लोके सतामद्य जनार्दन!"** हे जनार्दन! संसार में आप सब पुरुषों में श्रेष्ठतम हैं। आर्य समाज के प्रख्यात विद्वान् एवं पत्रकार स्वर्गीय श्री क्षितीश वेदालंकार श्रीकृष्ण के विषय में लिखते हैं ''राम ने नेपाल के सीमावर्ती प्रदेश मिथिला से लेकर राक्षसाधिराज रावण की लंका तक ठेठ उत्तर से लेकर ठेठ दक्षिण तक सारे भारत को एक सूत्र में आबद्ध किया था; तो श्रीकृष्ण ने द्वारिका से लेकर मणिपुर तक ठेठ पश्चिम से लेकर ठेठ पूर्व तक सारे भारत को एक सूत्र में आबद्ध और एक दृढ़ केन्द्र के आधीन करके समस्त राष्ट्र को इतना बलवान और इतना अपराजेय बना दिया कि महाभारत के पश्चात् लगभग ४ (चार) हजार वर्ष तक अनेक विदेशी शक्तियाँ बार-बार प्रयत्न करने पर भी आर्यावर्त्त को खण्डित नहीं कर सकीं। पश्चिम से पूर्व तक अर्थात् द्वारिका से मणिपुर तक राष्ट्र की सीमाओं को न केवल दृढ़ कर दिया, अपितु उसे एक लम्बे कालखण्ड तक एकता के सूत्र में बाँधकर अखण्ड बनाए रखना श्रीकृष्ण की नीतिनिपुणता तथा राजनीतिक कौशल को ही दर्शाता है।'' भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य भी राजा को देवता मानने की तत्कालीन समाजिक मान्यता का सिद्धान्त छोड़ने को तैयार नहीं परन्तु श्रीकृष्ण इस सिद्धान्त को चुनौती देते हैं और राजा को देवता का प्रतिनिधि मानने के स्थान पर जनता का प्रतिनिधि मनवाते हैं, श्रीकृष्ण जरासन्ध की अधिनायकवादी साम्राज्य स्थापित करने की नीति का विरोध कर ऐसे आत्मनिर्णयमूलक आर्य साम्राज्य के प्रतिपादक हैं जो आगे चलकर समस्त राजनीतिक तत्ववेत्ताओं का आदर्श बनता है। महाभारत में दो पात्र ऐसे थे जो सबके लिए आदरणीय और पूजनीय हैं, वे हैं भीष्म पितामह और श्रीकृष्ण। दोनों ही प्रतिज्ञाबद्ध हैं एक हस्तिनापुर के सिंहासन के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं तो दूसरे कौरव और पाण्डवों के बीच होने वाले विनाशकारी युद्ध में किसी के भी पक्ष में अस्त्र-शस्त्र न उठाने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं। दोनों में प्रतिज्ञा की समानता है तो दोनों में एक बड़ी असमानता भी है, वो यह है कि एक के लिए सिर्फ सिंहासन की रक्षा के लिए की गयी प्रतिज्ञा सर्वोपरि है, तो दूसरे के लिए राष्ट्र सर्वोपरि है। जन्माष्टमी के पर्व को हम जिस उत्साह और उमङ्ग से मनाते है तो उसका कारण यही है कि श्रीकृष्ण हर चुनौती से धैर्य व सफलतापूर्व जूझते हैं। श्रीकृष्ण पाण्डवों के हितैषी व सच्चे मार्गदर्शक हैं। श्रीकृष्ण वेदवदाङ्गों के ज्ञाता हैं। हम सबका दायित्व है कि हम मिलकर श्रीकृष्ण के उच्चादर्शों को अपनाकर नवनिर्माण के पथ पर अग्रसर हों। पुराणों के कल्पित श्रीकृष्ण समाज में जिस प्रकार

शेष पृष्ठ १० पर

श्री कृष्ण की रणनीति

(राजवीर शास्त्री)

> दयानन्द सन्देश के लम्बे समय तक सम्पादक रहे पं. राजवीर शास्त्री जी का यह लेख 'योगेश्वर श्रीकृष्ण' के विशेषांक से लिया गया है।-सम्पादक

श्री कृष्ण राजनीति के कुशल खिलाड़ी थे। वे देश, काल, परिस्थिति को देखकर राजनीति का प्रयोग करते थे। महाभारत युद्ध में कौरवों की सेना के बड़े बड़े महारथी जब मर गये, ग्यारह अक्षौहिणी सेना भी छिन्न-भिन्न हो गई और कौरव पक्ष में द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा को छोड़कर दुर्योधन ही शेष रह गया, तब दुर्योधन पैदल ही भागकर एक बड़े द्वैपायन नामक सरोवर में जा छिपा। यद्यपि उस समय अश्वत्थामा ने दुर्योधन को बहुत आश्वासन भी दिया था कि हमारे रहते हुए तुम्हें युद्ध से पलायन नहीं करना चाहिये। किन्तु दुर्योधन इतना हताश एवं भयभीत हो गया था, कि उसका धैर्य स्थिर नहीं रह सका। श्री कृष्ण तथा पाण्डवों ने व्याधों गुप्तचरों के द्वारा दुर्योधन का पता लगाया और खोज करते करते उस सरोवर पर पहुँच गये। उस समय श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को समझाते हुए कहा[1]- हे युधिष्ठिर! यह दुर्योधन माया-छल कपट की विद्या में अतीव निपुण है, इस का वध माया से ही करना चाहिये। क्योंकि सच्ची नीति यही है कि मायावी का वध माया से ही करना चाहिये।

तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर ने वाग्वाणों से दुर्योधन की भर्त्सना करते हुए बहुत कुछ कहा- हे दुर्योधन! तू समस्त क्षत्रियों और अपने कुल का विनाश करके कैसे जल में छिप गया है। शूरवीर तो युद्धक्षेत्र से कभी भी पलायन नहीं करते। तूने यह कायर अनार्यों का मार्ग क्यों अपनाया है। वह तेरा स्वाभिमान कहाँ चला गया, जिसके नशे में तू सुई के अग्रभाग के बराबर भूमि भी देने को तैयार नहीं था। युधिष्ठिर की फटकार सुनकर दुर्योधन का स्वाभिमान उद्‌बुद्ध हुआ और वह तालाब से बाहर आकर कहने लगा- हे युधिष्ठिर! मुझे पाण्डवों में से किसी से भी भय नहीं है। मैं साधु पुरुषों की धर्मनीति का अनुसरण कर युद्ध करना चाहता हूँ। धर्मराज युधिष्ठिर उसकी बातों में आकर दुर्योधन को यह वचन दे बैठे- यह सोभाग्य की बात है कि तुम[2] शूरवीर हो तुम्हारी यह इच्छा ठीक ही है कि हमारे में से एक के साथ युद्ध करूँ। अतः हे वीर! मैं तुम्हें यह वर देता हूँ कि तुम हम में से किसी एक का भी वध कर दोगे तो सारा राज्य तुम्हारा ही होगा। और मारे गये तो स्वर्ग को प्राप्त करोगे।

हे दुर्योधन। तू कवच एवं शस्त्रादि धारण करके पाँचों पाण्डवों में से जिसके साथ युद्ध करना चाहे, उस एक का ही वध कर देने पर तुम राज्य के स्वामी बन जाओगे।[3]

श्रीकृष्ण जी को जब युधिष्ठिर के वरदान का पता लगा, तो वे बहुत दुःखी हुए और युधिष्ठिर को धमकाते हुए कहते हैं- हे युधिष्ठिर! तुमने यह क्या कर दिया। सारा बना-बनाया खेल ही बिगाड़ दिया। यदि दुर्योधन ने तुम्हें अथवा नकुल आदि को युद्ध के लिए वरण कर लिया तो क्या स्थिति होगी। तुम दुर्योधन के पौरुष तथा राजनीति को नहीं जानते हो। तुमने फिर यह जुआ खेल लिया, पहले जुए से भी यह अतिशय भयंकर है। यह दुर्योधन गदायुद्ध में बहुत दक्ष है, इसका मुकाबला तुम्हारे में से कोई नहीं कर सकता। साक्षात् इन्द्र भी गदायुद्ध में इसे पराजित नहीं कर सकता। इसी बीच में भीमसेन कहने लगे- हे मधुसूदन! तुम किसी प्रकार का विषाद मत करो, मैं आप इस पापी का वध करके

१. मायाविन इमां मायां मायया जहि भारत।
मायावी मायया वध्यः सत्यमेतदयुधिष्ठिर।।
(महा. शल्य. ३१ अ.)

२. स्वयमिष्टं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम्।
हत्वैकं भवतो राज्यं हतो वा स्वर्गमाप्नुहि।।
(महा. शल्य. ३२ अ.)

३. पंचानां पाण्डवेयानां येन त्वं योद्धुमिच्छसि
तं हत्वा वै भवान् राजा हतो वा स्वर्गमाप्नुहि।।
(महा. शल्य. ३२वां अध्याय)

समस्त वैरों से छुटकारा पाऊँगा, भीमसेन के वचनों को सुनकर दुर्योधन मौन नहीं रह सका। और वह युद्धार्थ सन्नद्ध होकर भीमसेन से युद्ध करने लगा। दोनों के भयंकर युद्ध को श्रीकृष्ण ने ध्यान से देखा और भलीभाँति परख कर गदायुद्ध में दक्ष श्रीकृष्ण अर्जुन से कहने लगे- हे अर्जुन[1]! यद्यपि भीमसेन अधिक बलवान् है, किन्तु दुर्योधन भीम से गदायुद्ध में अधिक कुशल है। भीम धर्मपूर्वक युद्ध करता रहा, तो दुर्योधन को कदापि जीत नहीं सकेगा। अतः जुए के समय दुर्योधन की जांघ तोड़ने की प्रतिज्ञा का पालन करे और मायावी दुर्योधन को माया से ही नष्ट करे। ऐसा संकेत भीम को देकर दुर्योधन को मरवाया। इस प्रकार समयानुकूल प्रतिज्ञा का स्मरण कराना, और युद्ध के नियमों का भी उल्लंघन करके मायावी शत्रु का नाश करने की नीति में श्रीकृष्ण अतीव निपुण थे।

मित्र की रक्षा में नीति-विरुद्ध आचरण भी ठीक है- भीमसेन के द्वारा युद्ध नियमों का उल्लंघन करके दुर्योधन को मारा गया देखकर गदायुद्ध के महारथी बलराम को बहुत क्रोध आया और भीम को धिक्कारते हुए कहा- इस धर्मयुद्ध में नाभि से नीचे जो भीमसेन ने प्रहार किया है, वह धिक्कारने योग्य कर्म है। क्योंकि धर्मनीति के अनुसार नाभि से नीचे प्रहार नहीं करना चाहिये। बलराम से यह धर्मविरुद्ध आचरण सहन नहीं हुआ, वे अपना शस्त्र हल उठाकर भीमसेन को मारने के लिए दौड़े। इस समय यदि श्रीकृष्ण नीति से काम नहीं लेते, तो बड़ा अनर्थ हो जाता। श्रीकृष्ण ने तुरन्त भागकर अपनी भुजाओं से बलराम को पकड़कर रोका और नीति का उपदेश कर शान्त किया।

श्रीकृष्ण ने बलराम को शान्त करते हुए कहा- भैया बलराम! अपनी उन्नति छः प्रकार से होती है (१) अपनी उन्नति, (२) मित्र की उन्नति और (३) मित्र के मित्र की उन्नति। इसी प्रकार इसके विपरीत शत्रुपक्ष में शत्रु को हानि, शत्रु के मित्र की हानि तथा उसके मित्र के मित्र की हानि। अपने मित्रों की हानि के निवारण के लिए सदा प्रयत्न करना चाहिए। देखो! ये पाण्डव धर्म का आश्रय करने वाले हैं और हमारे सहज मित्र हैं बुआ-पुत्र होने से ये हमारे सम्बन्धी भी हैं। शत्रु ने इनके साथ सदा ही छलकपट करके इनकी हानि की है। भीम ने दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की पहले प्रतिज्ञा की थी, क्षत्रिय को अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना ही चाहिए। भैया बलराम! आप तो परंतप शत्रुओं को सदा संताप देने में प्रसिद्ध हो। भीम ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके शत्रु को मारा है, उसमें भीम का कोई दोष नहीं है, अतः आप शान्त ही रहें। इन मित्र तथा सम्बन्धी पाण्डवों की उन्नति से ही हमारी भी उन्नति है।

असत्य भी कभी धर्म हो जाता है

कर्ण के साथ युद्ध करते हुए वीर अर्जुन को युधिष्ठिर नहीं दिखाई दिये, तब अर्जुन और श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के पास गये। युधिष्ठिर ने उनको देखकर यह समझ लिया कि ये कर्ण को मार कर ही यहाँ आये हैं। किन्तु जब ऐसा नहीं पाया, तो युधिष्ठिर को क्रोध आ गया और वे अर्जुन की भर्त्सना करने लगे कि तुम युद्ध से भागकर क्यों आये हो? तुमने आज माता कुन्ती के दूध को भी लजा दिया, क्या क्षत्रियों का यही धर्म होता है? इत्यादि भर्त्सना भरे शब्द कहते हुए युधिष्ठि यह भी कह गये-

धिग् गाण्डीवं धिक् च ते बाहुवीर्यम्।।

अर्थात् गाण्डीव धनुष को धिक्कार है। अर्जुन भाई के मुख से ये शब्द सुनकर क्रोध से तिलमिला उठे। क्योंकि अर्जुन की यह प्रतिज्ञा थी कि जो मेरे गाण्डीव

---

१. भीमसेनसतु धर्मेण युध्यमानो न जेष्यति।
अन्यायेन तु युध्यन् वै हन्यादेव सुयोधनम्।।
(महा. शल्य. ५८ वां अध्याय)
सोऽयं प्रतिज्ञा तां चापि पालयत्वरिकर्षण।
मायाविनं तु राजानं माययैव निकृन्ततु
(महा. शल्य. ५८ वां अध्याय)

अहो धिक् यदधो नाभेः प्रहृतं धर्म-विग्रहे।
अधो नाभ्या न हनतव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः।
ततो लाङ्गुलमुद्यम्य भीम मभ्यद्रवद् बली।
तमुत्पतन्तं जग्राह केशवो विनयान्वितः।
बाहुभ्यां पीन वृत्ताभ्यां प्रयत्नाद् बलवद बली।।
अवाच चैनं संरब्धं शमयनिनव केशवः।
आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धिर्मित्रमित्रोदयस्तथा।।
विपरीतं द्विषत्स्वेतत षड्विधा वृद्धिरात्मनः।।
(महा. शल्य. ६० वां अध्याय)

को धिक्कारेगा, उसको मैं जीवित नहीं छोड़ूँगा। इसलिये।

असि जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्भरतर्षभम्।।

अर्जुन ने भाई युधिष्ठिर की हत्या करने के लिये गुस्से में होकर तलवार उठा ली। ऐसी दशा में यदि श्रीकृष्ण अर्जुन को नहीं समझाते तो बना बनाया खेल ही बिगड़ जाता। श्रीकृष्ण बोले- हे अर्जुन! तुम धर्म के सूक्ष्म रहस्य को नहीं जानते। तुमने कभी नासमझ अवस्था में यह प्रतिज्ञा की थी, आज उसके पालन करने की बात कह रहे हो। प्राणियों की हिंसा करना सबसे बड़ा अधर्म है। यदि किसी प्राणी की रक्षा झूठ बोलने से होती है, तो वह झूठ बोलना भी धर्म होता है। और तुम अपने बड़े भाई को प्रतिज्ञावश होकर मारते हो, यह तो महापाप है, प्रतिज्ञा पालन नहीं। देखो सत्य व असत्य क्या है-

भवेत् सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत्।।

यदि असत्य बोलने का परिणाम मंगलकारक हो तो वह असत्य भी धर्म है और यदि सत्य बोलने का परिणाम अमंगलकारक हो, तो वहाँ सत्य भी अधर्म है। इसलिये तुम्हारी सत्य प्रतिज्ञा से यदि अमंगल होता है, तो यह प्रतिज्ञा-पालन भी अधर्म ही है।

श्रीकृष्ण शत्रु पक्ष के संकल्पों को जानकर समयोचित कार्य करने में दक्ष थे-

कौरव पक्ष की समस्त सेनाओं व वीर पुरुषों का संहार होने पर पाँचों पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण धृतूराष्ट को सान्त्वना देने के लिये हस्तिनापुर गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि धृतराष्ट्र और समस्त स्त्रियों का करुण-क्रन्दन हो रहा था। धर्मराज युधिष्ठिर को घेर कर स्त्रियाँ कहने लगीं कि तुम्हारी धर्मज्ञता और दयालुता कहाँ चली गई कि जो तुमने ताऊ, चाचा, भाई, गुरु, गुरुपुत्र, मित्र, पितामहादि का भी वध कर डाला। सभी सम्बन्धियों व मित्रों को मारकर जो राज्य तुम्हें मिलेगा, उसका क्या करोगे? धर्मराज भी उनके विलाप में ही कुछ समय तक डूबे रहे, तत्पश्चात् धृतराष्ट्र को जाकर प्रणाम किया। शोक से व्याकुल धृतराष्ट्र ने अप्रसन्न मन से ही युधिष्ठिर को गले लगाकर विलाप किया और दुर्योधन का वध करने वाले भीम के प्रति ईर्ष्या रखते हुए खोज करने लगे। भीम के प्रति धृतराष्ट्र की क्रोधाग्नि को बढ़ता हुआ देखकर श्रीकृष्ण उसकी मन की भावना को समझ गये और तुरन्त हाथ से भीम को झटका देकर दूर किया और उसके स्थान पर भीम की लोहे की मूर्ति धृतराष्ट्र[1] के सामने कर दी। जिस बात को दूसरे व्यक्ति समझ भी नहीं पाये थे, श्रीकृष्ण ने उसका उत्तर देकर शीघ्र ही भीम की रक्षा की। धृतराष्ट्र ने उस मूर्ति को ही भीम समझकर इतने बल से दबाया कि मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े हो गये।[2] लोह-मूर्ति को बल से दबाने के कारण धृतराष्ट्र के मुख से खून निकलने लगा और छाती में पीड़ा होने लगी। धृतराष्ट्र को तब संजय ने बहुत समझाया कि तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। क्रोध की अग्नि जब शान्त हो गई, तब धृतराष्ट्र हा भीम! हा भीम! कहकर विलाप करने लगे। उस समय श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र को समझाया- हे धृतराष्ट्र[3]। आप शोक न करें मैंने आपके अतिशय क्रोध को समझकर भीम की लोहे की प्रतिमा ही आपके आगे रखी थी और भीम को मृत्यु के मुख से पृथक् कर दिया था। मैंने आपके संकल्प तथा दस हजार हाथियों के तुल्य आपके बल को पहले ही जानकर ऐसा किया था। आपके पुत्र दुर्योधन ने ही एक लोहे की भीम की जो मूर्ति बनवाकर यहाँ रखी हुई थी, उसी के टुकड़े आपने किये हैं, भीम सुरक्षित है, अतः आप शोक बिल्कुल न करें।

महाबली कर्ण को मारने में सफलता का रहस्य-

अर्जुन और कर्ण का भयंकर युद्ध हो रहा था अचानक कर्ण के रथ का बांया पहिया पृथिवी में धंस गया। कर्ण ने रथ से उतर कर अर्जुन से कहा हे अर्जुन! दो घड़ी

१. महा. कर्ण पर्व. ६९ वां अ.।

१. तस्य संकल्पमाज्ञाय भीमं प्रत्यशुभं हरिः।
२. तं गृहीत्वैव पाणिभ्यां भीमसेनमयस्मयम्
बभञ्ज बलवान् राजा मन्यमानो वृकोदरम्।।
३. मा शुचो धृतराष्ट्र! त्वं नैष भीम त्वया हतः।
आयसी प्रतिमा ह्येषा त्वया निष्पातिता विभो।।
(महा. स्त्रीपर्व १२ अध्याय)

शेष पृष्ठ २७ पर

योगेश्वर कृष्णादि महापुरुषों को भोगेश्वरों के जाल से बचाओ

(प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेद सदन अबोहर 152116)

बहुत पुरानी बात है एक सज्जन ने राष्ट्रीय संघ के संस्थापक की जीवनी पढ़ने को दी। उसका एक वाक्य मुझे कभी नहीं भूलता। उसके लेखक ने लिखा है कि भारत का यह दुर्भाग्य रहा है कि यहाँ जिन महापुरुषों का जीवन अनुकरणीय रहा है, उन्हें अवतारों की कोटि में धकेल दिया जाता है और जब किसी को भगवान् का अवतार बना दिया गया तो फिर इसका अर्थ यही हुआ कि साधारण मनुष्य वह कार्य थोड़े ही कर सकेगा, जो भगवान् ही कर सकता है। श्रीराम-कृष्ण हमारे ऐसे ही महापुरुषों में से हैं। उस पुस्तक के लेखक का यह विचार निश्चय ही एक प्रखर सत्य है।

श्रीकृष्ण को अवतार बनाकर बहुत बड़ा अनर्थ किया गया है। गीता के दो तीन श्लोकों को लेकर बड़े प्रबल शब्दों में जोश से अवतारवाद की वकालत की जाती है कि धर्म की स्थापना के लिए, दुष्टों के नाश के लिए, सज्जनों के परित्राण के लिए ईश्वर अवतार धारण करता है। ये भाई यह भूल जाते हैं कि ये तीनों कार्य तो भगवान् बिना अवतार धारण किए भी करता आया है और कर सकता है। जिस प्रभु ने आदि सृष्टि में वेद का ज्ञान दिया, जो प्रभु स्वभाव से ही न्यायकारी व सर्वशक्तिमान् है, जिस प्रभु को वेद माता, पिता, सखा, मित्र व बन्धु बताता है, वह ये तीनों कार्य सहज रीति से सदा ही करता है।

लाला लाजपतराय जी ने अपने श्रीकृष्ण चरित में एक बड़ी मार्मिक बात लिखी है कि संसार में महापुरुषों पर उनके विरोधियों ने अत्याचार किए परन्तु श्रीकृष्ण एक ऐसे महापुरुष हैं जिन पर उनके भक्तों ने ही बड़े लांछन लगाए हैं। श्रीकृष्ण जी भक्तों के अत्याचार के शिकार हुए हैं व हो रहे हैं।

प्रायः नये-नये अवतार श्रीकृष्ण के ही होते हैं। श्रीराम का अवतार कभी सुना क्या? जबकि वे दोनों ही विष्णु के अवतार माने जाते हैं। बहुत वर्ष पुरानी बात है, पत्रों में कलकत्ता के एक पुजारी की करतूतों की चर्चा हुई। उसने स्त्रियों के साथ.... भले घरों की देवियों को गोपियाँ बना कर वह धूर्त कुकर्म करता रहा। कहाँ तो गीता की समाप्ति पर :-

यत्र योगेश्वरः कृष्णो ..... कहा गया है और कहाँ ऐसे दुष्टकर्मी। योगशास्त्र तो जीवन की नींव ही यम नियम पर रखता है।

ऋषि दयानन्द जी अभी मथुरा की कुटिया से दूर ही थे कि गुजरात में एक हलचल मची। इतिहास में इसे 'महाराज लायबल केस' के नाम से याद किया जाता है। ऋषि ने भी सत्यार्थ प्रकाश व अपने एक लघु ग्रन्थ में वल्लभ सम्प्रदाय के .... अनाचार लीला पर रक्तरोदन किया है। वहाँ भी तो श्रीकृष्ण के नाम पर तन, मन, धन सब गुरु के अर्पण और फिर क्या कुछ नहीं होता रहा? महाराज जी तो परस्त्रीगमन को रक्त की वृद्धि के लिए अच्छा मानते थे। यह सब कुछ बम्बई हाई कोर्ट में अभियोग में साक्षियों ने बताया था। इस पर हम क्या लिखें?

बहुत वर्ष पूर्व मैं सेना में जन्माष्टमी पर बोल रहा था। श्रीकृष्ण के चरित्र व जीवन दर्शन पर मेरे ओजस्वी व्याख्यान पर जवान व सब अधिकारी मुग्ध हो गये। मैं ही उनका मुख्य अतिथि था। मेरे व्याख्यान के पश्चात् एक मण्डली बनाकर जवानों ने श्रीकृष्ण जी पर एक गोपी की ओर से गाया-

मैं पानी भरने जाऊंगी,
तुम कुएं पर आइओ।
मैं फूल चुनने जाऊंगी,

तुम बाग में आइओ।
मैं पूजा करने जाऊंगी,
तुम मन्दिर में आइओ।...

इस गीत का हावभाव जैसा है, उस पर क्या लिखा जावे। यह है श्रीकृष्ण पर पौराणिकों की कृपा।

हर्ष की बात तो यह है कि अब कुछ विचारशील हिन्दुओं की विराट् रूप वा दिव्य चक्षु की परिभाषाएँ बदल रही हैं। यदि आर्यसमाज डटकर अपनी मान्यताओं का प्रचार करे तो अवतारवाद व मूर्ति पूजा को झटका देकर उखाड़ा जा सकता है। वोट नोट वादियों की परवाह न की जाये। सिद्धान्त की सत्य की रक्षा की जावे। धर्म की प्रतिष्ठा ही मुख्य लक्ष्य हो।

ऋषि के पत्र व्यवहार को पढ़िए। उनको जयपुर में पादरियों द्वारा श्रीराम कृष्ण आदि महापुरुषों की निंदा से कितना दुःख हुआ। महर्षि के लिए श्रीराम कृष्ण का अपमान असह्य थे। हम अपने तपोबल से इस अनर्थ को रोकें। पौराणिकों की तो यह परम्परा ही बन गई है कि ऋषियों मुनियों व महात्माओं के निष्कलंक जीवन पर दोष लगाना। पहले राम कृष्ण आदि पर लांछन लगाए। फिर 'रंगीला ऋषि' जैसी घटिया कृतियाँ माधवाचार्य आदि ने पेश की। अब मेरठ का एक धूर्त वही कुकर्म करके नाम कमाने लगा है। इन्हीं के लिए किसी ने कहा है-

'बदनाम अगर होंगे तो क्या नाम न होगा'

यह क्या रहस्य है कि इन लोगों ने आज तक ईसा, मूसा, मुहम्मद आदि विधर्मी मतों के बड़े पुरुषों पर तो इस प्रकार से कुछ भी लिखने का दुःसाहस नहीं किया परन्तु विधर्मियों की तुष्टि के लिए ऋषि पर इन्होंने कौन सा घिनौना वार नहीं किया? ऋषि के कुल पर (जबकि वह कुल पौराणिक ही था) भी वार किया। ऋषि पर जीते जी वार किए और जान तक लेकर भी चैन न आया। बलिदान के एक सौ वर्ष पश्चात् भी इनकी ऋषि के प्रति वही प्रवृत्ति है। माधवाचार्य ने कई बार कहा **"समाजी से नमाजी अच्छे।"** क्या नमाजियों से प्रेम के इसी रिश्ते के कारण यह कर्म वह करते चले आ रहे हैं?

आर्य समाज के प्रवर्तक ने श्रीकृष्ण की लाज बचाने का यत्न किया। आचार्य पं. चमूपति जी ने 'योगेश्वर कृष्ण' जैसा उत्तम कृष्ण चरित लिखा परन्तु हम आर्य लोग अपने इस उद्देश्य में अभी तक सफल नहीं हो पाए। पौराणिक कीर्तनकार स्त्रियाँ अब भी गाती हैं :-

'मेरी बांह पकड़ ले बनवारी'। यह बांह पकड़ने का अर्थ क्या नहीं जानते? परपुरुष की बांह .... हा! हा! हा आओ! आर्यो! ऋषि-मुनियों की लाज को पौराणिकों से बचावें।

❑❑

पृष्ठ ५ का शेष

प्रचलित हो रहे हैं, उससे समाज में भटकाव पैदा हो रहा है, पुराणों के कल्पित श्रीकृष्ण से समाज पाखण्ड के शिकञ्जे में फंसता जा रहा है। पुराणों के कल्पित श्रीकृष्ण से अवतारवाद को प्रोत्साहन मिलता है। यदि हम सभ्य समाज का, यदि हम अखण्ड राष्ट्र का, यदि हम सशक्त और सक्षम राजनीति का, यदि हम चरित्रवान् युवाओं का निर्माण करना चाहते हैं, तो हमें महाभारत तथा महर्षि दयानन्द के श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व समाज के समक्ष लाना होगा तथा उनके गुणों का अधिक से अधिक प्रचार-प्रसार करना होगा तभी जन्माष्टमी का पर्व मनाना सार्थक होगा। क्योंकि

"यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।"

अर्थात् जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं, जहाँ धर्नुधर अर्जुन हैं, वहाँ लक्ष्मी है, विजय है, अटूट नीति है, यह मेरी दृढ़ धारणा है।

❑❑

आओ! चलें, वैज्ञानिक धर्म एवं धार्मिक विज्ञान की ओर
(नै. अग्निव्रत, भीनमाल, राज.)

यह स्वभाव प्रत्येक प्राणी का होता है कि वह दुःख से बचना तथा सुख को पाना चाहता है। फिर भला सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्राणी मनुष्य क्यों नहीं सुख प्राप्ति हेतु पूर्ण पुरुषार्थ करेगा? आज संसार भर के प्रबुद्ध मनुष्य चाहे वे किसी भी उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर आसीन हों, संसार को सुखी बनाने का यत्न अपने-अपने ढंग से करते प्रतीत हो रहे हैं। संसार के संविधान, धर्माचार्य, सामाजिक संस्थाएँ, विकसित होता विज्ञान, अर्थशास्त्री, शिक्षाशास्त्री आदि सभी इसके लिए प्रयत्नशील हैं कि मनुष्य सुखी होवे परन्तु इसके उपरान्त भी आज सम्पूर्ण विश्व अशांति, आतंक, हिंसा, घृणा, मिथ्या, छल-कपट, ईर्ष्या, राग, द्वेष से ग्रस्त होकर अति दुःखी व अशांत है। धनी, निर्धन, बली-निर्बल व विद्वान्-मूर्ख सभी अशांत हैं। तब विचार होता है कि क्या कारण है कि चिकित्सा करते रहने पर भी रोग बढ़ता ही जा रहा है। मेरा मानना है कि इस सब का मूल कारण सत्य और वास्तविकता से अनभिज्ञ रहना अथवा जानकर भी उसके अनुकूल व्यवहार न करना ही है। आज सारे संसार में विकास की प्रतिस्पर्धा हो रही है। हम दूसरे को छल से गिराकर उससे आगे जाना चाहते हैं। दूसरे की झोंपड़ियाँ जलाकर अपने भव्य भवन बनाना चाहते हैं, दूसरे की थाली से सूखी रोटियाँ भी छीनकर स्वयं सुस्वादु सरस भोजन करना चाहते हैं, दूसरे के तन के जीर्ण-शीर्ण वस्त्र भी खींचकर स्वयं बहुमूल्य वस्त्र पहनकर फैशन करना चाहते हैं, तथा दूसरों का गला घोंटकर स्वयं एकाकी अमर जीवन जीना चाहते हैं। क्या ऐसा विकास हमारी शांति का विनाशक नहीं है? मानवीय-आत्मा का हनन करने वाला नहीं है? हमें विचारना होगा कि विज्ञान ने हमें अनेकों सुख सुविधाएँ प्रदान कीं परन्तु क्या हम सुख व सन्तुष्ट हुए? क्या दया, करुणा, मैत्रीभाव, भाईचारा, ईमानदारी और सच्चाई जैसे मानवीय मूल्यों को इस अंधाधुंध विकास की आंधी ने नष्ट-भ्रष्ट नहीं कर दिया है? जिस मनुष्य के लिए इन संसाधनों का विकास हो रहा है, वह मनुष्य अन्तःकरण एवं आत्मा से कितना विकसित हुआ है? उसका हृदय कितना विशाल व उदात्त हुआ है? उसका मस्तिष्क कितना सत्यासत्य विवेकी व न्यायप्रिय हुआ है? क्या आज किसी के पास यह सोचने का समय व इच्छा है? मेरे प्यारे मित्रों। जरो सोचिए। इसका दोष विज्ञान को तो नहीं दिया जा सकता। विज्ञान तो साधन है, साधन स्वयं में अच्छा व बुरा नहीं होता, बल्कि उसके उपयोगकर्ता पर निर्भर है कि साधन से अच्छा कार्य करे व बुरा। उपयोगकर्ता की मनोवृतियाँ ही अच्छे व बुरे के लिए उत्तरदायी हैं। अब प्रश्न उठता है कि मनुष्य की पतनोन्मुखी वृत्तियों का परिष्कार कौन करे? तब हमारा ध्यान सहसा ही धर्म की ओर जाता है परन्तु आज संसार में देखें तो अनेक परस्पर विरुद्ध विचार वाले मत-मतान्तर धर्म का रूप धारण करके मानव को सुधारने का प्रयत्न करते दिखाई दे रहे हैं और वास्तविकता यह है कि मानव इसमें फँसकर अंधविश्वास, रूढ़िवाद, अविद्या, दुराग्रह, पारस्परिक घृणा, हिंसा की ओर बढ़ता रहा है एवं बढ़ रहा है। धर्म के नाम पर जितना रक्तपात होता आया है, सम्भवतः उतना किसी अन्य कारण से नहीं हुआ हो। आज भी यह पाप जारी है। आज के वैज्ञानिक युग में भी धर्म के नाम इतनी हिंसा, कट्टरता, द्वेष व असहिष्णुता है, जिसकी कल्पना से ही हृदय विदीर्ण होता है। आज गौ नामक महोपकारी पशु, गंगा नदी, तुलसी, पीपल आदि वृक्ष तो साम्प्रदायिक हो ही गये, अब तो सूर्य, चन्द्र, तारों व भगवे, हरे रंग एवं

व्यायाम-प्राणायाम भी साम्प्रदायिक रंग में रंग दिए गए हैं। आज यदि कुछ अतिवादियों का सामर्थ्य होवे तो उगते सूर्य व आग की ज्वालाओं को भी हरा बना दे तथा यदि कुछ अन्य अति कट्टरवादियों का वश चले तो समस्त वनस्पति जगत् का हरा रंग भी नष्ट कर दें। आज समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूल स्रोत वेद व भारतीय प्राचीन महापुरुष इस साम्प्रदायिक द्वेष के शिकार हो रहे हैं। आज धर्म ने बड़ा भयंकर विनाशक रूप धारण कर रखा है। इस पाप के लिए सभी दोषी हैं, कोई न्यून तो कोई अधिक। इस तमोमयी निशा में स्वार्थान्ध कथित धर्मगुरु इस नादान मानवजाति को परस्पर लड़ाकर नष्ट करके अपने-अपने स्वार्थों को साध रहे हैं। नित नये-नये ढंग से एक दूसरे पर बौद्धिक आक्रमण कर रहे हैं, तो राजनेता या सामाजिक कार्यकर्ता कहाने वाले बिना सत्य का अनुसंधान किये अज्ञानमूलक तुष्टीकरण करके सत्यासत्य विवाद पर मूकदर्शक बने हैं। कहीं लिंग भेद, भाषा, क्षेत्र, ग्रामीण, नगरीय आदि आधार पर संघर्ष हो रहे हैं, तो कहीं निर्धन व धनी के बीच खाई खोदी जा रही है। कहीं जातिवाद व छूआछूत का अजगर इस राष्ट्र व विश्व को निगलने का प्रयास कर रहा है। इन सबके पीछे कहीं न कहीं कुछ न कुछ कथित धर्म की भूमिका अवश्य है।

मित्रो! क्या कभी आपने विचार किया है कि यह सब क्या हो रहा है? क्या मानव का यही कर्तव्य है? क्या इसे ही धर्म कहेंगे? मैं जब इस पर विचारता हूँ तो प्रतीत होता है कि केवल विश्वास के आधार पर टिके मत-मतान्तरों का होना ही मानव जाति के लिए घातक है। आज जिसे भी इच्छा हो अपनी मिथ्या आस्था के आधार पर अपना पंथ चला कर नादान मनुष्यों को अपना अनुगामी बनाकर ठग सकता है। वह शासन से अपने मत के अल्पसंख्यक होने का दावा करके स्वेच्छया माँग भी रख सकता है। वोट के लोभी शासक सेक्यूलरिज्म के नाम पर उसे भी अपनी अंध आस्थाओं को प्रचारित करने का अवसर दे देते हैं। विज्ञान के ठेकेदार बनने वालों ने भी ऐसी अज्ञानता का ताण्डव मचा रखा है। इससे सत्यधर्म लुप्त हो रहा है। उधर कोई-कोई धर्म व संस्कृति को ही उखाड़ फेंकने का आह्वान करते हैं। इस अनिष्ट फल से बचने के लिए धर्म (जो केवल एक ही हो सकता है, जबकि मत-पंथ अनेक हो सकते हैं) को सच्चे स्वरूप में समझना होगा। ऐसा तब हो सकेगा, जब इसे विज्ञान के साथ पूर्णतः जोड़ दिया जायेगा। तब धर्म पर आस्था रखने वाले उसी प्रकार एकमत हो सकेंगे, जिस प्रकार भौतिकी, रसायन-विज्ञान, गणित, खगोलिकी, जीव-विज्ञान, कृषि विज्ञान, आयुर्विज्ञान आदि विषयों में संसार के सभी मनुष्य एकमत हैं। इन भौतिक विद्याओं के कारण संसार में न कभी अलगाववाद पनपा और न रक्तपात ही हुआ। ध्यान रहे कि केवल आस्था व विश्वास से सत्य का निर्णय कभी नहीं हो सकता। आस्था व विश्वास परस्पर टकरायेंगे ही, जबकि सत्य कभी नहीं टकराता। इस संसार में मिथ्या आस्था-विश्वास-जन्य मतों ने खूनी खेल खेले हैं व खेल रहे हैं, परन्तु सत्य कभी किसी का खून नहीं लेता। आस्थाएँ मानव जाति को बाँटती हैं, जबकि सत्य मानव को जोड़ता है। आश्चर्य है कि छोटी-छोटी बातों में विज्ञान व तर्क की वकालत करने वाले धर्म के विषय में क्यों ऐसा नहीं करते? मुझे आश्चर्य व दुःख है कि दुःखनाशक व सुखमूलक धर्म के नाम पर यह पाप क्यों?

आध्यात्मिकता के नाम पर ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा क्यों? मेरे जागरूक मित्रो! हमें धर्म का सच्चा स्वरूप संसार के सम्मुख लाने का प्रयास करना होगा, जिसमें पाखण्ड, अंधविश्वास, अवैज्ञानिकता, पूर्वाग्रह, रूढ़िवाद, अमानवीयता पक्षपात व असत्य का कोई स्थान नहीं है। जो देश, काल व परिस्थितियों की सीमाओं से परे शाश्वत व सार्वदेशिक है। जो मानव ही नहीं अपितु प्राणिमात्र के लिए सदैव हितकर है। यही विचार संसार के आद्य

ऋषि ब्रह्मा से लेकर ऋषि दयानन्द पर्यन्त का रहा है। धर्म के नाम पर अलगाववाद का पाठ पढ़ाने वाले सत्य-तर्क-विज्ञान के नाम से भयभीत होकर दूर भागने वाले धर्मप्रचारकों, आचार्यों, साधु-सन्तों, पंडितों, मौलवियों, पादरियों, ग्रंथियों आदि सभी मान्य महानुभावों को अपने-अपने हठ, दुराग्रह, पूर्वाग्रह पद-प्रतिष्ठा धन की लालसा को त्याग कर विज्ञान-बुद्धि से सोचने का साहस जुटाना होगा। उन सभी महानुभावों को विचारना होगा कि जब हम परमात्मा के बनाये भौतिक नियम विज्ञानादि पर एकमत हो सकते हैं। इन विषयों को साथ-साथ मिल बैठकर पढ़-पढ़ा सकते हैं और ऐसा करते हुए भौतिक उन्नति कर सकते हैं, तब इसी भाँति परमात्मा के ही बनाये आध्यात्मिक नियमों में परस्पर भेद क्यों स्वीकार करते व बढ़ाते हैं? आज नये-नये मत जन्म लेकर अपने को सच्चा धर्म बताने का दावा कर रहे हैं, तो आमजन ही नहीं अपितु अत्युच्च शिक्षित महानुभाव यहाँ तक कि वैज्ञानिकों का भी धर्म विषयक विशेष अध्ययन व चिन्तन नहीं होता, इससे वे भी भय या लोभ के वशीभूत अथवा भीड़ को देखकर मत-पंथों के दलदल में फँस जाते हैं। बड़े-बड़े राजनेता, समाजशास्त्री, पत्रकार, संविधानवेत्ता व साहित्यकार भी धर्म विषय में नितान्त मूढ़ बन सत्यासत्य विवेक बिना ही एकता का मिथ्या पाठ पढ़ाते हैं। कोई यह विचारने का यत्न नहीं करता कि सत्य का आधार न तो भारी भीड़ होती है, और न ही लोभ या भय से उत्पन्न कोई फलाकांक्षा की पूर्ति हो जाना। सत्य निर्णय वैज्ञानिक बुद्धिजन्य तर्क, प्रमाण व तथ्यों के आधार पर तथा गहन, मनन, चिन्तन व निर्मल निष्पक्ष निःस्वार्थ हृदय से ही हो सकता है, जो आज दुर्लभ हो गया है। हम यह भी विचारने का प्रयत्न नहीं करते कि हम न्यूनताओं को जानते हुए भी दुराग्रही बने रहते हैं तथा अपने मत के दोष बतलाने वाले के प्राणघातक भी बन बैठते हैं। तब सत्य ग्रहण की तो बात ही क्या कहें? उधर जो वैज्ञानिक सत्य, न्याय, पक्षपातरहितता, अध्यात्म, निर्मलता, नैतिकता की लेशमात्र भी चर्चा नहीं करते, वे सत्य के ग्रहण तथा असत्य के परित्याग के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। कोई वैज्ञानिक जिसे धर्माचार्य भले ही नास्तिक कह दें, अपने जीवन भर के पुरुषार्थ से खोजे गये किसी सिद्धान्त को किसी अन्य वैज्ञानिक द्वारा असिद्ध होते जान लेता है, तब वह तत्काल अपनी भूल को स्वीकार कर नवीन सिद्धान्त को अपना लेता है जिस बात को वैज्ञानिक नहीं जानता तो तत्काल अपनी कमी स्वीकार कर लेता है। कभी अतिशयोक्ति में बात नहीं करता। अहा! कैसा अनूठा आदर्श वे हम धर्माचार्य कहाने वालों के लिए प्रस्तुत करते हैं। ऐसे कथित धर्म को धिक्कार है, जो हमें सत्य की ओर जाने से रोके। क्या हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि हमें सत्यासत्य विवेक के क्षेत्र में सबसे अधिक उदार व विशाल हृदय होना चाहिए क्योंकि सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं होता। मैं विचारता हूँ कि जिस दिन विश्व भर के धर्माचार्य पूर्ण निष्पक्ष एवं वैज्ञानिक बुद्धि से युक्त होकर सत्य का ग्रहण व असत्य का परित्याग करने का सत्साहस करेंगे, उस दिन संपूर्ण भूमण्डल पर एक सत्य धर्म का शासन होगा, एक ईश्वर (वह ईश्वर विशुद्ध वैज्ञानिक युक्तियों से भी सर्वथा सिद्ध करने योग्य है तथा जिसका स्वरूप भी सर्वथा वैज्ञानिक है। शोक है कि आज इस महान् तथा सर्वाधिक गम्भीर विज्ञान को कथित आस्थओं वा कथित सैक्यूलरिज्म वा प्रबुद्धता के कोलाहल में भुला दिया गया है। इस एक ध्रुव वैज्ञानिक सत्य को सहस्रों रूपों में कल्पित करके मानवता को खण्ड-खण्ड कर दिया है। इस विषय पर हमारी वेबसाइट पर “ईश्वर अस्तित्व एवं स्वरूप की वैज्ञानिकता” वीडियो देख सकते हैं) की पूजा होगी। साम्प्रदायिक हिंसा, वर्गसंघर्ष, देशसंघर्ष आदि समाप्त होकर सारा विश्व परमपिता-परमात्मा का एक परिवार बनने की दिशा में अग्रसर होगा परन्तु इसके लिए हमारे आधुनिक वैज्ञानिकों को भी यह सोचना होगा कि विज्ञान

को तकनीक से कहाँ तक जोड़ना उचित व आवश्यक है, जिससे मानव समाज व्यर्थ की स्पर्धा में फँसकर सर्वविध असंतोष में जलता हुआ चिन्ता, अवसाद, ईर्ष्या-द्वेष से ग्रसित होकर दुःखों से पीड़ित न होता रहे। पर्यावरण नष्ट-भ्रष्ट होकर जीवों की प्रजातियाँ तक लुप्त न होती रहें। नये-नये रोग तथा जलवायु का संकट न बढ़ता रहे। और इन सबके कारण संसार में भयंकर असंतोष, संघर्ष, कृत्रिम अभाव, आतंकवाद का जन्म न होता रहे। इस हेतु विज्ञान को भी सत्य धर्म से जुड़ना होगा। ऐसा करने से विज्ञान उपर्युक्त समस्याओं का जनक नहीं बनकर धर्म के साथ मिलकर मानवीय मूल्यों का संरक्षक बनेगा। पर्यावरण शुद्ध व सुरक्षित रहेगा। इसके लिए वैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों, साम्यवादियों, अर्थचिन्तकों व राजनेताओं को अपना दृष्टिकोण बदलने का साहस करना होगा। धर्म को नशा न मानकर सत्याचरण पर आधारित मानवीय मूल्यों का संरक्षक मानना होगा। धर्म को विश्वास की कल्पित वस्तु मानने के स्थान पर वैज्ञानिक सत्य पर सिद्ध मानना होगा। जिस दिन विज्ञान ऐसे सत्य धर्म को साथ लेकर अनुसंधान करेगा, तब सारा विश्व भोगवाद की स्पर्धा को विकास नाम से सम्बोधित नहीं करके त्यागवाद में संतुष्ट रहकर आवश्यक, उपयोगी तथा निरापद आविष्कार ही करेगा। इससे न तो प्राकृतिक संसाधनों की न्यूनता होगी और न ही कृत्रिम अभाव एवं सामाजिक असमानताजन्य, अशान्ति व असन्तोष पनपेगा। इन पंक्तियों का लेखक व्यर्थ शोर मचाने वाले कथित प्रबुद्धों व कथित सामाजिक कार्यकर्ताओं को तो नहीं परन्तु वर्तमान शीर्ष वैज्ञानिकों को हमारी ईश्वर व धर्म विषयक अवधारणा को वैज्ञानिक कसौटी पर परखने का खुला आमन्त्रण देता है, साथ ही वर्तमान विज्ञान की कुछ प्रसिद्ध धारणाओं को भी सत्य की कसौटी पर परखने हेतु वैज्ञानिकों के साथ संवाद की भी इच्छा रखता है। आयें, हम दोनों पक्ष परस्पर संवाद करके सत्य का पता लगाकर इस मानव जाति को बचाने व सुखद समाज बनाने का प्रयास करें।

इस प्रकार के सुखद समाज को बनाने की भावना ऋषियों की सदैव से रही है। ऋषि दयानन्द तो परमाणु से लेकर परमेश्वर तक का यथार्थ ज्ञान व उससे अपना व दूसरों का उपकार करना ही विद्वानों का कर्तव्य बताते हैं। पूर्वकालीन ऋषि, देवगणों में ब्रह्मा, मनु, भृगु, नारद, सनत्कुमार, मार्कण्डेय, अगस्त्य, भरद्वाज, अत्रि, यास्क, गौतम, कणाद, कपिल, व्यास पतंजलि, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, महादेव-शिव, विष्णु, राम, कृष्ण आदि हजारों महापुरुषों तथा मध्यकालीनों में आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त आदि की दृष्टि में सत्य धर्म तथा सच्चे विज्ञान का ऐसा ही आदर्श था जिस कारण तत्कालीन संसार में सुख-शान्ति का साम्राज्य था। उधर महान् विदेशी वैज्ञानिकों में सर अल्बर्ट आइंस्टाइन, सर आलीवर जोसेफ लॉज, प्रो. जान एमबोज फ्लेमिंग, प्रो. एडवर्ड हल, जान एलन हार्कर, प्रो. सिलवेनिस फिलिप्स आदि अनेक वैज्ञानिक विज्ञान व अध्यात्म के प्रबल समर्थ थे। मैं जब-जब सर आइस्टाइन के बारे में सुनता व जानता हूँ, तब-तब मेरा मस्तक उस महान् व्यक्ति के सम्मुख आदर से झुक जाता है।

मित्रो! आज हमारे सम्मुख चुनौतीपूर्ण प्रश्न यह है कि आज जब विज्ञान व अध्यात्म दोनों अति दूर खड़े दिखाई दे रहे हैं, तब कैसे इन्हें साथ-साथ लाया जाये? मेरे मस्तिष्क व आत्मा ने विचारा कि क्यों न अपना जीवन इसी महान् मानवीय कार्य के लिए समर्पित किया जाये? सत्य, वेद, धर्म के संस्कार आर्य परिवार के वातावरण से मिले। मेरे आदर्श स्वरूप ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों से पोषण मिला। इस समय कुछ महान् वैज्ञानिकों व वैदिक विद्वानों का सद्भाव व सहयोग मिल रहा है। मैं आशा करता हूँ कि विश्व के अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, धर्माचार्यों व युवकों का भी ऐसा ही भाव मेरे प्रति बनेगा।

❑❑

परमात्मा गुरुओं का गुरु है

(आचार्य देवव्रत, गुरुकुल कुरुक्षेत्र)

सभी गुरुओं का गुरु परमपिता-परमात्मा है। क्यों है वह हमारा गुरु। वेद विश्व का आदिम ज्ञान है, इस वेद ज्ञान को चार ऋषियों के हृदय में गुरु बनकर के दिया। अतः सबसे पहला गुरु ईश्वर है। डार्विन का ये सिद्धान्त गलत है कि मानव प्रकृति से अपने आप सीख लेता है। आप अपने बालकों को प्रकृति में छोड़ दो वह प्रकृति से कुछ नहीं सीख सकता। ईश्वर का ज्ञान चार ऋषियों ने आगे प्रदान किया और वह क्रमशः हम तक प्राप्त होता है।

गुरु समर्थ रामदास ने शिवाजी का निर्माण किया। गुरु विरजानन्द ने स्वामी दयानन्द का निर्माण किया। स्वामी दयानन्द ने दुनिया के चिन्तन को बदल कर रख दिया। योगेश्वर कृष्ण के गुरु सन्दीपनी थे और राम के गुरु वशिष्ठ और विश्वामित्र थे।

स्कूल और कॉलेज के नाम अंग्रेजों की देन है। भारत को निरन्तर गुलाम बनाने के लिए लार्ड मैकाले को १८३५ में ये दायित्व दिया गया कि सर्वे करो कि भारत को कैसे गुलाम बनाए रखा जा सकता है। उसने भारत का भ्रमण करके देखा कि यहाँ की शिक्षा का स्तर अत्यन्त उत्तम है और इसको हम लम्बे समय तक गुलाम नहीं रख सकते। वे गुरुकुल समाज के सहयोग से चलते थे। उस सामाजिक व्यवस्था को तोड़ा गया। प्राचीन काल में यदि कोई माता-पिता अपने पुत्र-पुत्री को पढ़ने के लिए नहीं भेजते तो उनको राजकीय दण्ड दिया जाता था। आज हमें यह पढ़ाया जाता है कि हमारे पूर्वज मूर्ख थे वे कुछ नहीं जानते थे लेकिन इतिहास इससे हट कर है। महाराज मनु जो विश्व के प्रथम संविधान निर्माता थे उन्होंने कहा था-

"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।

हे विश्व के मानव! यदि तुम अपने जीवन में उत्तम शिक्षा को धारण करना चाहते हैं तो भारत में आकर अपने जीवन की शिक्षा को ग्रहण करो।

जब सम्पूर्ण विश्व में लोगों को ठीक से वस्त्र पहनना भी नहीं आता था उस समय में हम ईश्वर को प्राप्त करने की विद्या में सर्वाग्रणी हो चुके थे। आज हमें इतिहास में यह भी पढ़ाया जाता है कि हमारे पूर्वज मांसाहारी थे। हमारे शास्त्रों में अन्नं वै प्राणः तो लिखा मिलता हे लकिन यह कहीं लिखा नहीं मिलता कि मांसं वै प्राणः। अतः इस बात को समझना आवश्यक है।

माता-पिता चाहे कितने ही विद्वान् क्यो न हों लेकिन जो बालक की अध्यापिका/अध्यापक उसे पढ़ा देते हैं, वह उसके लिए ब्रह्मवाक्य हो जाता है। अतः गुरु का ठीक होना आवश्यक है।

आज देश की दुर्दशा निरन्तर बढ़ रही है। विधर्मियों का बोलबाला निरन्तर बढ़ रहा है। हमें जागना आवश्यक है।

हजारों लाखों गुरुकुलों पाठशालाओं को समाप्त करने का षड्यन्त्र रचा गया। जो-जो व्यक्ति इन संस्थानों को धन से सहायता करते थे, उन के ऊपर अधिक कर लगाये गये और दण्डित भी किया गया। मैकाले ने ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में कहा कि मैं भारतीयों को रंग-रूप से तो नहीं बदल सकता लेकिन विचार से ऐसे बना दिये जायेंगे जो निरन्तर हमारी शिक्षा का परचम लहराते

रहेंगे।

भाषा हमें हर प्रकार की आनी चाहिए लेकिन हमें अपने सांस्कृतिक मूल्यों को नहीं छोड़ना है। प्रत्येक राष्ट्र अपने मूल्यों को धारण करके ही बच सकता है। गुरु-शिष्य की परम्परा को समाप्त कर देने के कारण हमारे आदर्श समाप्त हो गये।

जब बालक-बालिका छः वर्ष के हो जाते थे, तो उन्हें उनके माता-पिता कहते कि हमारे पास आपके जीवन के निर्माण का समय नहीं है आपके जीवन का सही निर्माण गुरुकुल में ही हो सकता है। अतः माता पुत्री को एवं पिता पुत्र को समित्पाणि करके गुरु के पास ले जाते थे। गुरु के पास जाकर बालक बालिका कहते कि हमारा जीवन शून्य है आपके समीप आकर ही अपने आप को ज्ञानयुक्त कर सकते हैं।

श्रद्धावान् बालक ही शिक्षा को सही रूप से प्राप्त कर सकता है। हे आचार्य! तव अग्निः। मैं समिधाओं की तरह सीधा-सरल हूँ। जैसे इन समिधाओं में जलने की क्षमता है लेकिन ये तब ही जलेंगी जब आप जैसी अग्नि के समपर्क आयेंगी। अग्नि का अर्थ ज्ञान, प्रकाश, नेतृत्व, प्रकाश स्तम्भ आदि है। उसी प्रकार हे आचार्य! मैं भी आपकी ज्ञानाग्नि से अपने आपको प्रकाश युक्त कर लेना चाहता हूँ। आचार्य उपनयमानो कृणुते गर्भमन्तः। आचार्य भी बालक को कहता है कि हे बालक! मैं तुमको ऐसे रखूँगा जैसे माँ अपने गर्भ को रक्षित करती है। आचार्य इस बात की जिम्मेदारी लेता था कि मैं तुम्हारे जीवन का निर्माण मेरी जिम्मेदारी होगी। गुरु-शिष्य परम्परा के कारण हमारी शिक्षा उन्नत बन पाई थी।

मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु। हम एक दूसरे को हृदय में इस प्रकार से धारण करते हैं जैसे जल में जल मिल कर एक हो जाता है। दूध में से हंस दूध को पी जाता है और पानी को छोड़ देता है। रेत में मिली हुई चीनी को चींटी खा जाती है लेकिन जल में से जल को अलग नहीं किया जा सकता।

ब्रह्मचर्य की आयु न्यूनतम २५ वर्ष मानी गई है। लम्बे समय तक छात्र गुरुकुल में रहकर अपने जीवन का निर्माण कर लेता था।

ये तो हमारे भारत का पुरानी परम्परा थी। लेकिन अब क्या हो रहा है। अब इसका उल्टा चल रहा है। जिसमें गुरु का एक लक्षण नहीं वह गुरु बने बैठे हैं। सही अर्थों में गुरु कौन हो सकता है, जो वेद का ज्ञाता हो। जो अष्टांग योग को मानने वाला हो। लोकैषणा, वित्तैषणा, पुत्रैषणा आदि से दूर है। जो दूसरों का कल्याण चाहता है वही सच्चा गुरु है। लेकिन आज गुरुओं को देखें तो एक भी वेद का विद्वान् नहीं है। लोकैषणा कूट-कूट कर भरी है। गृहस्थों के इतने घर नहीं हैं जितने आजकल के गुरुओं के पास विशाल-विशाल भवन हैं। हमें त्यागी होने का उपदेश देते हैं और खुद अपने आप हमारे द्वारा त्यागे गए सब पदार्थों को अपना लेते हैं। ऐसे-ऐसे गुरु बने हुए हैं जो ये कहते हैं कि समोसा खाने से, हरी-लाल चटनी खाने से कल्याण होगा। वित्तैषणा इस प्रकार की कूट-कूट कर भरी हुई है, जब तक पैसा जमा नहीं कर देते, तब तक उनको प्रवचन में बैठने की अनुमति नहीं होती।

आजकल के तथाकथित गुरु पाप क्षमा होने का दावा करते हैं। जो भी चेला-चेली इनके पास जाते हैं, उनके ऊपर पानी का छींटा देकर पापों को क्षमा करते हैं और नये पाप करने का परमिट दे देते हैं। हम सावधान रहें और अपने ज्ञान का शुद्धिकरण करते हुए दूसरों को भी बदलने की प्रेरणा दें।

❑❑

कालजयी संत के ग्रन्थ पर प्रहार

(राजेशार्य आट्टा, मो.- 09991291318)

प्रिय पाठकवृन्द! ऋषि संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को मानव जीवन का लक्ष्य माना जाता था और वर्तमान संसार की सारी दौड़-धूप इन्हीं के चारों ओर हो रही है, पर समस्या यह है कि एक-एक को पकड़ कर ही कोई वाद चल पड़ता है और दूसरे से टकराकर विवाद हो जाता है। जबकि मानव जीवन की सफलता चारों के समन्वय में समाहित है। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि इनका यथार्थ स्वरूप ही जीवन को सफलता प्रदान करता है मनमाना नहीं। यथार्थ स्वरूप की प्राप्ति 'उपदेश्योपदेष्ट्र-त्वात् तत्सिद्धि' (उपदेश्य और उपदेशक के कारण होती है) 'इतरथान्ध परम्परा' (सच्चे उपदेश्य और उपदेशक के अभाव में अन्धपरम्परा चल पड़ती है)

इसी अन्धपरम्परा में जीने के कारण भारतवर्ष सेकड़ों वर्ष तक मानसिक व शारीरिक रूप से गुलाम रहा। इसी गुलामी के कारण उत्पन्न हुई हीन भावना से ग्रस्त होकर अपने यथार्थ स्वरूप को भूले हुए विश्व-गुरु को महर्षि मनु की घोषणा 'एतद्देश प्रसूतस्य..' याद दिलाकर पुनः उसी गौरवशाली पद पर आसीन करने के लिए ही महर्षि दयानन्द ने वाणी व लेखनी के माध्यम से वैदिक धर्म का प्रचार किया और बदले में विधर्मियों से ही नहीं अपनों से भी तिरस्कार, अपमान, गाली, पत्थर, विषपान आदि ही तो मिले। मुल्तान में तो यहाँ तक कह दिया था- "यह स्वामी तो अंग्रेजों का नौकर है, ईसाइयों ने भारतवासियों को ईसाई बनाने के लिए इस स्वामी को एक लाख रुपयों से खरीदा है, इस स्वामी के व्याख्यान नहीं सुनने चाहिए।"

यह सत्य है कि समाज व राष्ट्र के लिए जीवन अर्पित करने वालों को पुरस्कार में अपमान ही मिलता है- वह चाहे शंकराचार्य हो, सुकरात हो, गैलीलियो हो, राणा प्रताप हो या शिवाजी हो। पर दुनिया के इतिहास में महर्षि दयानन्द के अतिरिक्त और किसी सुधारक, संन्यासी या महात्मा ने अपने राष्ट्र के उत्थान के लिए इतना अपमान नहीं सहा होगा। धूर्त पण्डितों ने उस देवता के चरित्र हनन करने का कोई अवसर नहीं छोड़ा। ग्रन्थों में मिलावट (लिखते समय) करने की धूर्तता की गई। इसी कारण सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम संस्करण नष्ट करना पड़ा। द्वितीय संस्करण के विरोध में धर्म के ठेकेदारों की ओर से न जाने कितनी बार लिखा गया। ऋषि को अश्लील गालियाँ दी गईं, पर यह भी उन (ऋषि) के चरित्र और तप का प्रभाव है कि उनके धुरन्धर विद्वान् शिष्यों ने प्रत्येक वार का मुँह तोड़ उत्तर दिया है। पाठक उस इतिहास का भी संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लें-

सत्यार्थ प्रकाश विरोधी इस खण्डनात्मक साहित्य में बहुचर्चित पुस्तक 'दयानन्द तिमिर भास्कर' पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र (मुरादाबाद) ने लिखी थी, जिसका उत्तर पं० तुलसीदास स्वामी (मेरठ) ने 'भास्कर प्रकाश' लिख कर दिया था। पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र तो निरुत्तर होकर बैठ गये, लेकिन उनके अनुज पं० बलदेव मिश्र ने 'भास्कर प्रकाश' के उत्तर में 'धर्म दिवाकर' पुस्तक लिखी। पं० तुलसीराम जी ने 'दिवाकर प्रकाश' लिखकर इसका भी उत्तर दिया तो मिश्र बन्धु खामोश होकर बैठ गये।

बाद में पं० कालूराम शास्त्री अमरौधा (कानपुर) ने 'सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदर' पुस्तक लिखी, जिसका उत्तर पं० रामदुलारे लाल आर्य ने 'सत्यार्थ प्रकाश चमत्कार' लिखकर दिया। आगे चलकर पं० माधवाचार्य

शास्त्री ने 'सत्यार्थ प्रकाश की छीछालेदड़' पुस्तक लिखी। इसका मुँह तोड़ उत्तर दिया डॉ. श्रीराम आर्य (कासगंज) ने 'सत्यार्थ प्रकाश की छीछालेदड़ का उत्तर' लिखकर जो १९६७ में प्रकाशित हुई। १९३९ में पं० कालूराम शास्त्री ने 'आर्य समाज की मौत' लिखी, तो इसका उत्तर देते हुए पं० मनसाराम 'वैदिक तोप' ने 'पौराणिक पोल प्रकाश' लिखी। पं० कालूराम शास्त्री ने ही एक अन्य पुस्तक 'वैदिक सत्यार्थ प्रकाश उर्फ आर्य समाज की अन्त्येष्टि' लिखी, तो इसके उत्तर में शास्त्रार्थ महारथी पं० जे० पी० चौधरी जी काव्यतीर्थ ने 'कालूराम का जनाजा' लिखी।

इनके अतिरिक्त भी सत्यार्थ प्रकाश के खण्डन में कई पुस्तकें लिखी गईं, जिनका उत्तर वैदिक विद्वानों ने लेखों, भाषणों व शास्त्रार्थ के माध्यम से दिया। पं० अखिलानन्द शर्मा ने 'सत्यार्थ प्रकाश लोचन' और 'वैदिक सत्यार्थ प्रकाश' लिखी। मुंशी जगन्नाथ दास ने 'सत्यार्थ प्रकाश की समीक्षा' लिखी। पं० कालूराम ने 'धर्म प्रकाश' लिखी।श्री अजीत कुमार जैन ने 'सत्यार्थ प्रकाश दर्पण' (१२वाँ समुल्लास) व ज्ञानी दित्त सिंह ने सिखमत के दृष्टिकोण से सत्यार्थ प्रकाश की आलोचना लिखी। पादरी जे०एस० भकुरदास ने तेरहवें समुल्लास की आलोचना लिखी। मौलवी सनाउल्ला ने चौदहवें समुल्लास की आलोचना में 'हक प्रकाश' लिखा, जिसका उत्तर स्वामी दर्शनानन्द जी ने 'तकजीवे हक प्रकाश' लिखकर दिया। मुस्लिम से आर्य बनने के बाद पं० देवप्रकाश जी ने 'कुरआन परिचय' लिखकर इस्लाम की बोलती बंद कर दी। पं० रामचन्द्र देहलवी और ठाकुर अमर सिंह (अमर स्वामी) जैसे शास्त्रार्थ महारथियों ने अपने जीवन में मुस्लिम विद्वानों से अनेक शास्त्रार्थ किये। (वैदिक सार्वदेशिक ३ से ९ जुलाई २००८)

यह भी सत्य है कि जिसने भी सत्यार्थ प्रकाश पर आक्षेप किया, वह जानबूझकर किया, अनजाने में नहीं। ऋषि के शब्दों में कहूँ तो - "मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।"

"बहुत से हठी दुराग्रही मनुष्य होते हैं जो कि वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मत वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फँसकर नष्ट हो जाती है।"

रामलीला मैदान, दिल्ली में आयोजित एक सभा में श्री सीताराम आर्य (आर्य मुनि जी) ने एक संस्मरण सुनाया था- सनातन धर्म के आचार्य श्री माधवाचार्य (कौल, कैथल, हरियाणा) जीवन भर लिखकर व बोलकर ऋषि दयानन्द को गालियां देते रहे, आर्य विद्वानों से शास्त्रार्थ करते रहे। अनेक पौराणिक ग्रन्थ भी उन्होंने लिखे हैं। एक बार किसी अवसर पर मुझसे इनकी भेंट हो गई। मैंने एकान्त में पूछा- आचार्य जी! आप जीवन भर ऋषि दयानन्द को गालियाँ देते रहे हैं और आर्य विद्वानों को शास्त्रार्थ की चुनौतियाँ देते रहे हैं आर्य समाज के आगे आपको अनेक बार निग्रह स्थान पर पहुँचकर पराजय का मुँह भी देखना पड़ा है। आज आप और मैं आमने-सामने हैं, हमारे बीच सिवाय परमात्मा के दूसरा कोई नहीं है। ईश्वर को साक्षी कर आप बतायें कि देवात्मा ऋषि दयानन्द को आप क्या समझते हैं? अपील इतनी मार्मिक, गम्भीर और जोरदार थी कि माधवाचार्य के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली, साम्प्रदायिक आग्रहों से सर्वथा मुक्त होते हुए वे बोले- 'ऋषि दयानन्द तो एक विरल विभूति थे, न निकट भूत में वैसी विभूति यहाँ अवतरित हुई और न निकट भविष्य में पैदा होगी।' बात समाप्त हो गई, विषय भी यहीं समाप्त हो गया।

माधवाचार्य जीवनभर जिन साम्प्रदायिक आग्रहों का बोझ ढोते रहे, वही स्थिति अन्य धर्माचार्यों की है। वे इतने पागल नहीं हैं कि सच्चाई को न जानते हों,

लेकिन इतने भोले भी नहीं हैं कि अपनी आजीविका को, प्राप्त सम्मान को खुद अपने ही पाँव से ठुकरा दें। हाँ, जिस पर ईश्वर की कृपा हो जाये, स्वामी अच्युतानन्द की तरह वह मान और मण्डली की चिंता छोड़कर ऋषि के त्याग का सम्मान करने इस सत्य अर्थ के प्रकाश में अवश्य आयेगा।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने 'रहणी' लेख में लिखा है- ''आर्य समाज के संन्यासियों में एक स्वामी धर्मानन्द जी थे, वे विशेष व्याख्याता न थे, उनको जिला अमृतसर के आर्यसमाजी भली भांति जानते हैं। आर्यसमाज में आने से पूर्व वे एक बहुत बड़े जन-समुदाय के माननीय धर्मगुरु एवं श्रद्धेय थे। उनका अपना लिखा ग्रन्थ सिखों के धर्मपुस्तक के आकार का था। उस समय उनका शिष्य वर्ग भी पर्याप्त था। वह शोक व प्रसन्नता के अवसर पर उसी पुस्तक का पाठ किया करता था। उस समय वे आर्य समाजी न थे।

एक समय उनके श्रद्धालुओं ने उनसे प्रार्थना की, महाराज आप आर्यसमाज के निषेध में भी कुछ शब्द लिखें। उन्होंने उत्तर दिया- मुझे उनके विषय में ज्ञान नहीं है। लिखूँ तो क्या लिखूँ? तब भक्तों ने कहा- हम आपको उनका पुस्तक देते हैं आप पढ़कर देख लें। उन्होंने इसे स्वीकार किया। भक्तों ने सत्यार्थ प्रकाश लाकर दिया। वे पढ़ते रहे। जब पुस्तक समाप्त हुआ, तो उन्होंने एक शब्द लिखा, उसकी मुझे एक पंक्ति ही स्मरण है। जो इस प्रकार थी-

'वेला बीत गया, मैंनू सज्जणां दी सार न आई।'. ...

उस शब्द को सुनकर भक्तों ने पूछा- महाराज, आप अपना भाव स्पष्ट कहें। उन्होंने उत्तर दिया- "आर्यसमाज का धर्म ही धर्म है, अन्य सब पन्थ धर्म नहीं हैं। शोक है, इस बात का बोध समय पर न हुआ, अन्यथा मैं भी इस धर्म की कुछ सेवा करता।" उनका उसके पश्चात् का जीवन आर्यसमाज की सेवा मे ंही बीता और वह साधारण जनता में प्रचार करते थे और अपने पुराने भक्तों में भी श्रद्धा भाजन बने रहे।".... (स्वतंत्रानन्द लेखमाला)

प्रिय पाठकवृन्द! यह सत्य है कि सत्यार्थ प्रकाश पर आक्षेप करने वाले सब पण्डित धर्म और मोक्ष को छोड़कर केवल अर्थ व काम के वशीभूत हो इतने पतित हुए थे पर जिस राजनैतिक महात्मा की प्रशंसा किये बिना आर्य समाज के विद्वानों के लेख पूरे नहीं होते थे, जिसे देश ने सर्वोच्च व स्थायी पदवी दे रखी है, वह राष्ट्रपिता भी ऋषि पर प्रहार करने में नहीं शरमाया। 'यंग इंडिया' २८ मई १९२४ में स्वामी श्रद्धानन्द, सत्यार्थप्रकाश, आर्यसमाज व शुद्धि के विषय में मिथ्या प्रलाप करते चले गये-

"स्वामी दयानन्द सरस्वती के लिए मेरे हृदय में बड़ा सम्मान है।... परन्तु उन्होंने हिन्दू धर्म को तंग बना दिया है। मैंने आर्यसमाजियों की बाइबल सत्यार्थ-प्रकाश को पढ़ा है।.... मैंने इस प्रकार के महान् सुधारक के हाथ से लिखी, इससे अधिक निराशाजनक और कोई पुस्तक नहीं पढ़ी। उन्होंने इस बात का दावा किया है कि वह सत्य के प्रतिनिधि हैं। परन्तु उन्होंने अनजाने जैन धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई मत तथा इस्लाम की असत्य व्याख्या की है। उन्होंने संसार भर के अत्यन्त विशाल और उदार धर्म को संकुचित बना दिया है। मूर्ति पूजा के विरुद्ध होते हुए भी उन्होंने एक सूक्ष्म मूर्तिपूजा चलाई है, क्योंकि उन्होंने वेद का अक्षर-अक्षर सत्य माना है और सब विद्याओं का होना वेद में बताया है। आर्य समाज की उन्नति का कारण सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षायें नहीं है, परन्तु इसके प्रवर्तक का उत्तम आचार है।..."

इन सब आक्षेपों का उत्तर दिया था ऋषि के दीवाने पं० चमूपति ने, जो जून १९२४ के 'आर्य' मासिक में

छपा था, जिसे पूज्य श्री राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने 'विचार वाटिका' में 'आर्यसमाज और महात्मा गाँधी' शीर्षक से सम्पादित किया है। अच्छा हो, यदि पाठक उस उत्तर को स्वयं पढ़ें। फिर भी संकेत रूप में उस दार्शनिक विद्वान की तड़प तो देखिये-

"इन (गाँधी) का सारा लेख पढ़ जाओ, ऐसा मालूम होता है कि उनकी दृष्टि में यदि कोई कतल करने योग्य मजहब है तो हिन्दुओं का, क्यों हिन्दुओं की पवित्र पुस्तक वेद तक का उपहास कर दिया गया है। अहिन्दू मतों ने संसार को शान्ति दी। इस्लाम और शान्ति? इन दो भावों को महात्मा ही एक स्थान पर रख सकते हैं। साधारण जनों की शक्ति में यह चमत्कार नहीं, महात्मा ने वेद को पढ़ा भी है?..."

"इससे ऋषि को यह दिखाना भी अभीष्ट था कि अन्य मनुष्यकृत ग्रन्थों का अध्ययन भी किस दृष्टि से किया जायगा जैसे मनुस्मृति की परख वेद की कसौटी पर की गई है, वैसी ही परख कुरान और इञ्जील आदि की भी होनी चाहिए। उनके जो हिस्से वेदानुकूल हों वे ठीक हैं और जो विरुद्ध हों वह अशुद्ध हैं।"

"ऋषि का 'मिथ्या वर्णन' भारत में ही रहा और इसका प्रभाव यह है कि इस्लाम शुद्ध हो रहा है। परमात्मा इसे ईरान में ले जावे। वहाँ की औरतों पर से भी इस्लामी अत्याचार (शाप) हट जायेगा। महात्मा कुछ कहें, संसार भर की औरतों के रोम-रोम से ऋषि के उपकारों के लिए धन्यवाद की ध्वनि उठ रही है।. ..."

"अब जरा महात्मा गाँधी के सत्य वर्णन का प्रभाव देखना।.... यदि यह सत्यवादिता है तो ऐसी लाखों सत्यवादिताएँ ऋषि की एक "असत्यवादिता पर न्योछावर हैं, जिसने स्त्री जाति की रक्षा की, जिसने केवल हिन्दू स्त्रियों का ही नहीं किन्तु मुसलमान महिलाओं का भी मान रख लिया।"

"महात्मन्! आँखें मींच लेने का नाम सत्यवादिता नहीं। दुनिया में मजहब हैं। हाँ, मजहब हैं, जो दुराचार पर बल देते हैं, बुरे से बुरे आचरण से मनुष्यों का उद्धार बतलाते हैं। इनमें पूर्णता प्राप्त करें- यह अच्छी शुद्धि है। क्या सत्यार्थ प्रकाश इसलिए निराशाजनक है कि ऐसी शुद्धि का विधान नहीं करता?...."

"महात्मन्! अन्त में आपसे एक निवेदन है।.... आपके शील से डर इसलिये होता है कि अब आप धर्म तक की बलि देने को तैयार हो गये हैं। यह हम नहीं होने देंगे। आपका हिन्दू धर्म जो हो, हमारा तो वेद का, शास्त्र का, ऋषियों और मुनियों का आर्य धर्म है।"

स्वामी श्रद्धानन्द जी के हत्यारे को भी अपना भाई कहने पर वैदिक विद्वान् पं० अयोध्या प्रसाद बी.ए० ने गाँधी की भ्रान्ति दूर करने के लिए पत्र-व्यवहार किया, पर गाँधी में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इतने पर भी कुछ लोग गाँधी की चरण-वन्दना में लगे रहे और उन्हें सत्यार्थ प्रकाश का प्रशंसक बनाने के लिए साहित्य भेंट कर खुश होते रहे। जबकि शुद्ध सत्य यही है कि गाँधी 'राजनैतिक' थे और अंत समय तक ऋषि दयानन्द व उनके आर्य समाज के प्रति उनका उपेक्षा भाव रहा। यह पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित 'महर्षि दयानन्द और महात्मा गाँधी' पुस्तक से स्पष्ट होता है, जिसमें उन्होंने अपनी गाँधी से हुई भेंटों व पत्र व्यवहार का वर्णन किया है।

मुझे आश्चर्य होता है कि फिर भी आर्यसमाज गाँधी को क्यों ढोता रहा? क्यों महर्षि की महानता को दर्शाने के लिए गाँधी की सम्मति देने का मोह न छोड़ पाया? क्या गाँधी के कहने से महर्षि महान हो जायेंगे? क्या महर्षि को महान सिद्ध करने के लिए गाँधी के प्रमाण-पत्र की आवश्यकता है?

१८-६-१६३८ के पत्र में एक गुजराती सज्जन नानावटी ने लिखा था- "बापूजी की आज्ञा से मैं सत्यार्थ

प्रकाश देख गया हूँ। मुझे कहना पड़ता है कि स्वामी दयानन्द जितने महान् थे उनका यह ग्रन्थ उतना महान् नहीं है बल्कि इसे धर्मग्रन्थ का नाम देकर जगत् के समक्ष रखने में हमें जरूर संकोच होता है। धर्मग्रन्थ को चाहिए ऐसा उसमें गाम्भीर्य नहीं है। भाषाग्रन्थ को चाहिए उतनी संस्कारी नहीं है। प्रमाणभूतविषय निरुपण नहीं है" इत्यादि। और इसी आधार पर गाँधी जी ने लिख दिया- "नानावटी जी ने जो प्रमाण दिये हैं, उनको मैं स्वीकार करता हूँ।.... उन पर मेरा विश्वास है।"

१६ अक्तूबर १६४६ को भंगी बस्ती, वाल्मीकि मन्दिर नई दिल्ली में पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति जी ने गाँधी से भेंट कर उस पत्र का स्पष्टीकरण करना चाहा, तो गाँधी ने नानावटी को जानने से भी मना कर दिया और कोई खेद भी प्रकट नहीं किया।

इसके बाद जुलाई और सितम्बर १६४७ को पं० जी ने गाँधी के पास राष्ट्रभाषा, लिपि, गोवध निषेध व इस्लामिक हिंसा आदि विषयों पर चार पत्र लिखे। उनमें से केवल दो के उत्तर आये और वे भी मात्र एक-एक पंक्ति में। अपने अंतिम पत्र के समय तो पं० जी की श्रद्धा का बाँध टूट गया और उन्हें लिखना पड़ा- "कृपा करके अपने महात्मापन को वर्तमान अत्यन्त दूषित वायुमण्डल में लाकर मुस्लिमेतरों की कठिनाईयों को और न बढ़ाइये। अच्छा है जो भारत को वस्तुतः अपना देश नहीं समझते, जो मुस्लिमेतरों को काफिर समझ कर कुरान की शिक्षानुसार उनकी हत्या तक करना सर्वथा उचित और स्वर्ग प्राप्ति का साधन समझते हैं, वे पाकिस्तान चले जाएँ।...."

ऐसे लोग सत्यार्थ प्रकाश को क्या समझेंगे? सत्यार्थ-प्रकाश को समझा था नेपाल के लाडले वीर शुक्रराज शास्त्री के पिता माधवराव जोशी ने। कूड़े के ढेर से फटी सत्यार्थ प्रकाश उठाकर पढ़ी और अपने पूरे परिवार को वैदिक धर्म के लिए कुर्बान कर दिया। नास्तिक मुंशीराम ने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा, तो स्वामी श्रद्धानन्द बनकर इतिहास में अमर हो गये। गुरुदत्त विद्यार्थी ने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा, तो मुनिवर कहलाए। रामप्रसाद बिस्मिल ने पढ़ा, तो भारत की स्वतंत्रता के लिए क्रांतिकारी दल खड़ा हो गया। रूस के प्रसिद्ध लेखक टालस्टाय ने पढ़ा तो वानप्रस्थी बन गये। हॉलेण्ड के नोबल पुरस्कार प्राप्तकर्ता मैटरलिंक ने पढ़ा तो ईश्वर और पुनर्जन्म को मानने लगे। मैक्समूलर ने पढ़ा तो आर्यो का मूल स्थान, वेद और भारत के प्रति उनकी अवधारणा बदल गई। विभिन्न सम्प्रदायों के विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थों पर ईमानदारी से सोचना शुरु कर दिया। कुछ ने तो चुपके-चुपके आपत्तिजनक स्थलों को मूल ग्रन्थों से हटा लिया, तो कुछ ने नये सिरे से उनकी व्याख्या कर उन स्थलों को तर्कसंगत, बुद्धिसंगत, विज्ञानसंगत बनाने का प्रयास किया। स्वामी वेदानन्द जी (दयानन्द तीर्थ) ने 'सत्यार्थप्रकाश का प्रभाव' पुस्तक में विस्तार से वर्णन किया है कि किस प्रकार इस ग्रन्थ ने संसार में हलचल मचा दी। प्रतिबन्ध लगाने वाले अपना मुँह लेकर रह गये।

प्रिय पाठकवृन्द! सब प्रकार के विरोधों को सहन करते हुए भी अब तक विश्व की २३ भाषाओं में इस ग्रन्थ का अनुवाद हो चुका है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के शब्दों में- "संभवतः गोस्वामी तुलसीदास के द्वारा रचित श्रीरामचरित मानस के पश्चात् सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी भाषा का सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ है।" बलिदान पथ के पथिक पं० लेखराम ने कहा है- "जब कोई सत्यार्थ प्रकाश आरम्भ से अन्त तक पढ़ जावे, तो वह संसार भर के मत-मतान्तरों को तिलांजलि देता हुआ वेद-सूर्य के महत्त्व का कायल हो जाता है। सत्यार्थ-प्रकाश प्रभाती तारे के सदृश हैं जो कि अपने अस्तित्व से रात्रि की समाप्ति करता हुआ सूर्योदय का सुसमाचार दे रहा है।"

❑❑

स्वधा से होता प्रशस्त वसुधा का सुधापथ

(देवनारायण भारद्वाज, अलीगढ़)

जिस वेदमन्त्र के छिटक गये कनक कणों से यह शीर्षक बन गया है, क्यों न और कुछ कहने से पहले उस प्रेम-प्रेरणा पूर्ण मन्त्र का ही प्रथम अवलोकन कर लिया जाये।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वध्या मादयन्ते।

त्वं तान्वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम्।।

(अथर्ववेद १८.२.३५)

जो अग्नि को जलाकर हवन आदि करके दग्ध या तपे हुए लोग, और जो अग्नि को बिना जलाये हुए ही तप गये लोग, दोनों ज्ञान के प्रकाश के मध्य आत्मत्व धारण शक्ति अर्थात् अपनत्व भाव से परिपूर्ण आनन्द को प्राप्त करते हैं। यदि वे जातवेद संज्ञक सर्वज्ञानी प्रभु या परिज्ञानी पितरजन को आत्मीयता पूर्वक जानते हैं, तो वे वास्तव में अपनत्व भावना से पूर्ण देव-पूजा-संगीतकरण एवं दानरूप यज्ञ का ही परिपालन करते हैं।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्यदाता।

प्रातः प्रातः गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमन्सस्यदाता। (अथर्व १९.५५.३-४)

मन्त्रानुसार प्रमुख रूप से गृहस्थ ही हैं, जो नित्य अग्निहोत्र के द्वारा सायं से प्रातः, प्रातः से सायं स्वयं को अग्निदग्ध करते रहते हैं। यज्ञाग्नि के अभ्यास से अपने सौमन्स्य अर्थात् आरोग्य, आनन्द और धन की वृद्धि करते हैं। "अस्मिनयज्ञे स्वधयामदन्तः" (यजु.१९.५८) पितृयज्ञ के अनुसार हमारे पितृगण अपनत्व की भावना से हर्षित होते हैं, क्योंकि ऐसा करने से गृहस्थ लोग भी सदा प्रसन्न रहते हैं "स्वधास्थ तर्पयत मे पितृन्" (यजु. २.३४) वे ऐसा विनयपूर्ण सम्बोधन करते हैं- हे पितरवृन्द। आप हमारे अमृततुल्य मधुर पदार्थों से तृप्त हों। वास्तव में 'भवन' वही है जहाँ 'हवन' होता हो, 'हवन' को ही 'होम' कहते हैं। इसीलिए हमारा होम और अंग्रेजी का होम (Home) समानार्थक है।

स्वधा- आत्मीयता अथवा अपनत्व गृहस्थधर्म की धुरी है, इससे परिवार ऐश्वर्य एवं शौर्य की ऊँचाई पर पहुँचता है। पर्वत की ऊँचाई पर चढ़ती बालिका ने अपनी पीठ पर अपने छोटे भाई को कपड़े की डोली बनाकर बैठा रक्खा था। किसी यात्री ने चढ़ाई में होने वाले कष्ट की ओर बालिका का ध्यान आकृष्ट कर कह दिया- "इस बोझ को नीचे उतार क्यों नहीं देती, जिससे तू आसानी से ऊपर चढ़ सकेगी। बालिका ने किंचित आक्रोश के साथ उत्तर दिया- "क्या कहते हो- यह बोझा नहीं मेरा भाई है।" कुख्यात आतंकी संगठन इस्लामिक स्टेट ने सीरिया में (रमजान के दिनों में) दो युवकों को दिन में खाना खाने के आरोप में फाँसी पर लटका दिया, और वहाँ एक पर्चा लगा दिया "इन्होंने धर्म की चिन्ता किए बिना उपवास तोड़ा है।" कोई सम्प्रदाय आत्मीयता की (अपनत्व) भावना के बिना धर्म की संज्ञा धारण नहीं कर सकता। इस स्वधा की सुधा का वर्णन जहाँ होगा, कोई भी धर्म सम्प्रदाय क्यों न हो, वहाँ स्वधा-वसुन्धरा में उसका यशगान सुनिश्चित है। बात इस्लाम की ही करते हैं। बालिका मरयम आसिफ सिद्दीकी को बाल्यकाल से गीता-पाठ में रुचि थी। माता-पिता ने इसे धर्मविरोधी न मानकर बालिका को अपनत्व की भावना से प्रोत्साहित किया। जून २०१५ में सम्पन्न विस्तृत गीता- ज्ञान-प्रतियोगिता में उसको सर्वप्रथम स्थान प्राप्त हुआ। माता-पिता उसको प्रधानमंत्री मोदी से मिलाने को लाये और इस परिवार का दूरदर्शन व समाचारपत्रों के माध्यम से कीर्तिमान विश्व में छा गया। इस आत्मीयता की सम्वेदना क्या होती है, वह सुनामी की आयी भयंकर

बाढ़ के एक दृश्य से पता चलता है। भरा-पूरा कुनबा जब डूब गया, तब बचाव दल जीवित रह गये डूबते परिवार के मुखिया को बचाने के लिए दौड़ा। मुखिया बोला मुझे मत बचाओ। मैं अब जीना नहीं चाहता। तुम लोग इस डूब रही अलमारी को बचाकर ले जाओ- यह स्वर्णाभूषण व रूपयों से भरी है।

इस आत्मीयता का एक और उदाहरण आँखें खोल देने वाला है। तमिलनाडु के एक साधारण परिवार में बेटी का जन्म हुआ। मित्र-पड़ोसी-सम्बन्धी सब बधाई देने पहुँचे। माँ ने बेटी के मुस्कुराते चेहरे को देखकर कुछ गौर किया। कुछ ऐसा, जो उसे अन्दर तक झकझोर गया। डॉक्टरों ने कहा यह दृष्टिहीन है। माता-पिता अवाक रह गये, पर कुछ पल के लिए। अगले ही क्षण स्वधा (आत्मीयता) जागृत हो गई, माँ ने बेटी को गले लगाते हुए तय किया कि वह उसके जीवन को प्यार से ऐसे रोशन करेगी, कि वह कभी एहसास ही नहीं करेगी कि वह देख नहीं सकती। पिता रेलवे में नियुक्त, माँ शिक्षित गृहणी। पिता पुस्तकें लाते माँ पढ़कर सुनाती। पुत्री कॉलेज की वाक प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान पाती। वह २०१३ में बैंक अधिकारी बनी और डूबते ऋण को वसूलकर 'वसूलरानी' कहलाई। वह कहती है कि एक दिन किसी को पड़ोस में पानी बरबाद करते हुए टोक दिया, तो सुनने को मिला 'लो आ गई कलक्टर साहिबा।' यह व्यंग्य भी रंग लाया। यू.पी.एस.सी. परीक्षा के द्वितीय प्रयास में सफल होकर पद्मजा की पुत्री 'बेनोजेफाइन' ने इसी वर्ष (२०१५) में विदेश मन्त्रालय में अपना सम्मानित पदासन गृहण किया है। विदेश विभाग का तात्पर्य है अपने देश से बाहर विश्व के देशों की ओर प्रयाण।

जो लोग यज्ञाग्नि में दग्ध होकर तपकर निखरते हैं, यह उनकी चर्चा हुई। राजा जनक एवं महर्षि याज्ञवल्क्य के संवाद से पता चलता है कि इस भौतिक अग्नि में दग्ध होने से अधिक परिपक्वता है -

''श्रद्धाग्नि सत्यमाज्यमे'' अर्थात श्रद्धारूपी अग्नि में सत्य व्यवहार की आहुति अर्पित करना। अगला मंत्र इसी की ओर संकेत करता है :-

शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं तपः।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु।।
(अथर्व १८.२.३६)

अर्थात्- हे विद्वन्! तू तप तो कर किन्तु आग लगाने के लिए नहीं अपितु शान्ति स्थापन के लिए तपकर। अत्याचार से किसी को सन्तप्त मत कर। तेरा अनुकरणीय बल व तेजपूर्ण सद्व्यवहार सम्पूर्ण पृथ्वी पर व्याप्त हो जाये। यह स्वधाभावना अर्थात् अपनत्व की आत्मीयता से ही संभव होता है। गृहस्थ के लिए यज्ञाग्नि उपासना आवश्यक है, किन्तु गृहत्यागी बिना इस अग्नि के ही आत्मीयता की स्नेह भावना में दग्ध होता रहता है, तपता रहता है और जलता हता है। उसकी स्वधा अर्थात् निज कुल की आत्मीय-अपनत्व भावना "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सुधापथ-अर्थात् अमरता के मार्ग पर अग्रसर हो जाती है। पिता कर्षण जी तिवारी एवं माता यशोदा अमृतावेन की यह आत्मीयता ही थी, जिसने बाल्यकाल से ही मूलशंकर को सद्ग्रन्थज्ञान प्रदान कर चौदह वर्ष की आयु में शिवरात्रि व्रत धारण कर शंकर के दर्शन की ओर प्रेरित कर दिया। मूलशंकर ने दयानन्द सरस्वती बनकर इस अपनत्व को विश्व-व्योम तक विस्तृत कर निरीह भावना के उद्धार हेतु प्रशस्त कर दिया। यह संभव हुआ गुरु विरजानन्द के अगाध अपनत्व से जो उस दिन प्रकट हुआ था, जब वे शिक्षापूर्ण कर जाने लगे तो गुरुदेव ने अज्ञानान्धकार को मिटाने के लिये गुरु दक्षिणा में समग्र दयानन्द का ही समर्पण करा लिया था। स्वामी रामतीर्थ अमरीका यात्रा के क्रम में सानफ्रांसिस्को के बन्दरगाह पर आ जाने पर जलयान के एक ओर बैठे थे। साथी यात्री ने कहा आपका सामान कहाँ है, उसे समेटिये। उन्होंने कहा जो कुछ मेरे शरीर पर है, उसके सिवा और कुछ नहीं है मेरे पास। तब तो आपके पास रुपया-पैसा होगा? मैं वह भी नहीं रखता। अच्छा तो अमरीका में आपका कोई सम्पन्न मित्र होगा? स्वामीजी ने उत्तर दिया- हाँ, है क्यों नहीं है। मैं केवल एक ही अमरीकन को जानता हूँ- वह हैं

शेष पृष्ठ २६ पर

छान्दोग्य का प्रथम प्रपाठक, प्रथम खण्ड

(उत्तरा नेरूर्कर, बंग्लौर, मो-09845058310)

छान्दोग्य के आरम्भ में ओम् की उद्‌गीथ रूप में उपासना करने का उपदेश है। इसके प्रथम प्रपाठक, प्रथम खण्ड में इस विषय का सुन्दर वर्णन है। वैसे तो छान्दोग्य पर अनेकों व्याख्याएँ उपलब्ध हैं, जो कि प्रायः शंकर के भाष्य से प्रेरित हैं। परन्तु मुझे कुछ भिन्न अर्थ समझ में आया। उसी को इस लेख में विस्तार से लिख रही हूँ।

ओमित्येतदक्षरमुद्‌गीथमुपासीत। ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्।। १। १। १।।

प्रचलित अर्थ है- ओम्- इस अक्षर, उद्‌गीथ की ही उपासना (मनुष्य) करे। (वेदवित् अथवा सामगान करने वाले अथवा ब्रह्मवित्) इस ओम् को ही उच्च स्वर में गाते हैं। यह उपनिषद उस ओम् का उपव्याख्यान हैं। 'उद्गीथ' का अर्थ है- ऊँचे स्वर में गाया हुआ, अर्थात् बढ़-चढ़ के वर्णित। मेरे अनुसार, यहाँ अर्थ हैं- ओम्- इस अक्षर, उद्गीथ की ही उपासना (मोक्षार्थी) करे। वेद इस ओम् को ही बढ़-चढ़ के गाते हैं। वस्तुतः, वे उस ओम् का उपव्याख्यान हैं। मेरे ये अर्थ इसी खण्ड के पाँचवें, नवें और दशमें प्रवाक् से पोषित हैं, जहाँ स्पष्टतः ओम् को ही उद्गीथ कहा गया है। परमात्मा जिनका निज नाम ओम् है, वे अविनाशी हैं, और वेदों के मुख्य विषय हैं। इसी प्रकार अन्य प्रवाकों में भी मेरे अर्थ किञ्चित भिन्न हैं। जहाँ अधिक भिन्न हैं, वहाँ मैंने दोनों अर्थ दे दिए हैं।

एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसोऽपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्ना उद्गीथो रसः।।१।१।२।।

इन भूतों का पृथिवी रस है (अन्तिम विकार है; अन्यों से उत्पन्न जैसे उनका सार है)। पृथिवी का जल रस है (उसका सहकारी है।) जल का औषधि है (पृथिवी और जल मिल कर ओषधि उत्पन्न करते हैं। सृष्टि-क्रम में पहले पृथिवी बनती है। फिर उसके ठण्डा होने पर, जल उपलब्ध होते हैं। उसके बाद ही स्थावर पौधे, वृक्ष आदि उत्पन्न होते हैं)। औषधियों का पुरुष रस है (औषधियों के उत्पन्न हो जाने पर जङ्गम प्राणियों की सृष्टि होती है, जिनमें परुष- जीवात्मा औषधियों से पोषित शरीर से सम्बद्ध होता है)। पुरुष का रस वाणी है (प्राणियों में अन्तिम सृष्टि मनुष्य की होती है, जो अपनी वाणी के कारण ही मुख्य रूप से अन्य जन्तुओं से विशिष्ट हैं। वाणी से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है)। वाणी का रस ऋचाएँ अर्थात् वेद हैं (वाणियों में उच्चतम वेदवाणी है- उसमें सबसे अधिक ज्ञान निहित है)। ऋचा का रस साम है (जिन वेद-मन्त्रों में परमात्मा की उपासना विशेष रूप से है, वे ही साम हैं। वस्तुतः, वे ही वेद के सार हैं)। साम का रस उद्गीथ है (सामों का प्रतिपाद्य विषय परमात्मा है)।

स एष रसानां रसतमः परमः पराध्योंऽष्टमो यदुद्गीथः।।१।१।३।।

इन आठ रसों में (पृथिवी, जल, ओषधि, पुरुष, वाक्, ऋक्, साम, उद्गीथ) आठवाँ जो उद्गीथ है, वह रसों का भी रस है, परम है, सर्वोत्कृष्ट है।

कतमा कतमर्क् कतमत् कतमत् साम कतमः कतम उद्गीथ इति विमृष्टं भवति।। १। १। ४।।

(उपर्युक्त वाक् के विभागों में) कौन-कौन सी ऋक् हैं, (उनमें से) कौन-कौन से उद्गीथ हैं, यह विचारणीय विषय है।

वागेवर्क् प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथः। तद्वा एतन्मिथुनम् यद्वाक् च प्राणश्चर्क् च साम च।। १। १। ५।।

वाणी ही ऋचा है, प्राण साम है, और ओम् यह अक्षर उद्गीथ है। ये युगल हैं- वाक् और प्राण, ऋक् और साम। (इनका अटूट सम्बन्ध है। इनको जान लेने से उद्गीथ प्राप्त होता है। वेदों का प्राण परमेश्वर और

उसकी प्राप्ति के मार्ग का उपदेश है।)

तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे संसृज्यते। यदा वै मिथुनौ समागच्छत आपयतो वा तावन्योन्यस्य कामम्।। १। १। ६।।

ये (दोनों) मिथुन (युगल) इस अक्षर (ओम्) में सृष्ट होते हैं (ओम का सृजन करते हैं, उसको प्राप्त कराते हैं)। (जिस प्रकार एक स्त्री-पुरुष का) जब एक जोड़ा (प्रीतिपूर्वक) पास आता है और मिलता है, तब एक-दूसरे की कामना पूर्ण कराता है (उसी प्रकार ये युगल मिलकर सन्तान रूप में ओम् को प्राप्त कराते हैं)। अर्थात् जब जीवात्मा प्राण से वाणी के द्वारा वेदमन्त्रों को उच्चारित करके, ओम् की उपासना करता है, तब ही उसकी कामना-परम ब्रह्म-उसको प्राप्त होता है। यही ब्रह्म की प्राप्ति का एकमात्र पथ है।

आपयिता ह वै कामानां भवति, य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते।। १। १। ७।।

जो इस प्रकार जानकर, उद्गीथ (ब्रह्म) की उपासना करता है, वह (सारे) कामों का प्रापक होता है। अर्थात् जब जीव इस गति को प्राप्त करने की स्थिति तक पहुँचता है, तब तक उसकी शारीरिक कामनाएँ उसको पहले ही छोड़ चुकी होती हैं। उसकी एक ही कामना बच रहती है- वह है परमात्मा से योग। उनकी वह कामना उद्गीथ की उपासना- समाधि में पूर्ण हो जाती है।

तद्वा एतदनुज्ञाक्षरम् यद्धि किञ्चानुजानात्योमित्येव तदाहैषो एव समृद्धिर्यदनुज्ञा। समर्द्धयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते।। १। १। ८।।

प्रचलित अर्थ- यह अक्षर (ओम्) अनुज्ञा है (अनुमति देने में प्रयुक्त होता है)। जब (कोई) कुछ अनुमति देता है, तो ओम् ही कहता है। जो यह अनुज्ञा है, यही समृद्धि है। जो, इस प्रकार जानता हुआ, उद्गीथ की उपासना करता है, वह सारे कामों का वर्धन कर लेता है। यहाँ 'समृद्धि' को भिन्न व्याख्याकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से समझाया है। एक मान्यता है कि जो समृद्ध है, वही अनुमति दे सकता है, दीन नहीं। सो, उसी की सारी कामनाएँ पूरी होती हैं। दूसरी व्याख्या है कि 'समृद्ध' का अर्थ यहाँ 'अनुग्रह' है। सो, ओम् कहकर वह माँगने वाले पर अनुग्रह करके उसकी कामनाओं की पूर्ति करता है। जबकि ये गौण अर्थ माने जा सकते हैं, परन्तु इनका सन्दर्भ से और उद्गीथ की उपासना से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इसलिए ये इस स्थान पर बड़े ही अटपटे लगते हैं। मेरे अर्थ इस प्रकार हैं-

अनुज्ञा के यहाँ यौगिक अर्थ हैं- बाद में जाना हुआ।[1] सो, वेदों के जानने और उपासना के बाद ही ओम् को जाना जाता है। वह ओम् की अनुज्ञा ही उसका वर्धन करती है। जो विद्वान् उद्गीथ की इस प्रकार उपासना करता है, वह अपनी (सारी) कामनाओं का वर्धन करने वाला होता है, अर्थात् अपने में ओम् के दर्शन का वर्धन करता है। इसी विषय का आगे विस्तार किया गया है-

तेनेयं त्रयी विद्या वर्तते ओमित्याश्रावयत्योमिति शंसत्योमित्युद्गायत्येतस्यैवाक्षरस्यापचित्यै महिम्ना रसेन।। १। १। ९।।

उस (ओम्) के साथ यह त्रयी विद्या (वेद) रहती है- उसी को सुनाती है, उसी की प्रशंसा करती है, उसी को उच्च स्वर से गाती है; इस अक्षर की पूजा के लिए ही इस ओम् की महिमा और रस से ऋचाएँ युक्त हैं। यहाँ क्रमशः "होता ओम् बोलकर ऋग्वेद का उच्चारण करता है, अध्वर्यु ओम् बोलकर यजुर्वेद का उच्चारण करता है, उद्गाता ओम् बोलकर सामवेद का उच्च स्वर से गान करता है"- ऐसा अर्थ किया गया है, लेकिन यहाँ यज्ञ का प्रसंग नहीं है, अपितु जीवात्मा की परमात्मा के लिए खोज का ही विषय बना हुआ है।

तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद यश्च न वेद। नाना तु विद्या चाविद्या च यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिशदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवतीति।। १। १। १०।।

---

१. वास्तव में, अनुज्ञा का अर्थ 'अनुमति' इससे ही निकलता है। किसी के कुछ जताने पर, उसको उसके अनन्तर जानना कि वह उस इच्छा को पूर्ण कर सकता है।

इनके प्रचलित अर्थ हैं- जो (ओम् को) जानता है और जो नहीं जानता है, दोनों ही इसकी सहायता से अपने कार्य सम्पन्न करते हैं। परन्तु विद्या और अविद्या में भेद है। (उन दोनों में से) जो विद्या से, श्रद्धा से, उपनिषद के उपदेश से कार्य करता है, उसका काम अधिक फलदायक होता है। उपर्युक्त सभी इस अक्षर ओम् की ही व्याख्या है।

मुझे अर्थ इस प्रकार प्रतीत होते हैं- वेद के इस प्रकार प्रधानता से ओम् का व्याख्यान जानने वाले, और दूसरे जो वेद में साँसारिक ज्ञान पाते हैं- वे दोनों ही वेदों के ज्ञान का उपयोग करते हैं। परन्तु ये दोनों विद्याएँ भिन्न हैं- ओम् का ज्ञान विद्या है, साँसारिक ज्ञान अविद्या है। (इसी बात को उपनिषत्कार सप्तम प्रपाठक में नारद और सनत्कुमार की आख्यायिका में बताते हैं, जहाँ पर वे कहते हैं कि वेदादि तो सब नाम हैं, परम पद तो भूमा (परमात्मा) है। और बिल्कुल यही बात मुण्डक में पाई जाती है, जहाँ अङ्गिरा ऋषि महाशाल शौनक को बताते हैं- तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्यौतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।। मुण्डक० १। १। ५।। अर्थात् वेदादि सब निम्न विद्याएँ हैं। जो उस अक्षर ओम् की प्राप्ति कराए, वही उच्च विद्या है। स्वयं वेद यही कहते हैं- अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा, विद्ययामृतमश्नुते।। यजु. ४०। १४।। (इस प्रकार सर्वत्र एक ही बात दोहराई जा रही है।) जो उस विद्या से, उस पर श्रद्धा करते हुए, परमात्मा के निकट आसन जमा कर अपना "काम निकालता" है (अपना लक्ष्य साधता है), उसी का प्रयास सबसे अधिक लाभ वाला होता है (सांसारिक ज्ञान भौतिक सुख अवश्य प्राप्त करा सकता है, परन्तु परम सुख मुक्ति नहीं)। क्योंकि यह त्रयी विद्या निश्चय से ही ओम् का ही व्याख्यान है।

इस प्रकार अर्थ करने से पूरे खण्ड में एक प्रसंग बना रहता है, और एक गूढ़, सुन्दर अर्थ निकलता है। इस खण्ड में यज्ञ की चर्चा नहीं हो रही है, उसको इस प्रकरण में बलात् घुसाना मुझे सही प्रतीत नहीं हो रहा। इसी प्रकार ओम् का स्वीकृति देने में प्रयोग सही नहीं प्रतीत होता। सम्पूर्ण खण्ड का ही विषय वेदों का उद्गीथ का व्याख्यान होना है। इस छिपे अर्थ को जानकर मनुष्य मुक्ति की ओर अग्रसर हो सकता है।

अगली बार मैं प्रथम प्रपाठक के द्वितीय खण्ड के इसी प्रकार अति सुन्दर अर्थ बताऊँगी।

❑❑

पृष्ठ २३ का शेष

आप। यह कहते हुए स्वामीजी ने उनके कन्धे को अपने हाथ से स्पर्श कर दिया। उस यात्री में ऐसी मैत्री भावना जागी, कि वह उन अनन्य भक्त बन गया और अमेरिका प्रवास की व्यवस्था की।

उपरोक्त मन्त्र के केन्द्र बिन्दु 'स्वधा' का एक और उदाहरण देकर लेख का उपसंहार उचित समझता हूँ। तमिलनाडु के रामेश्वरम् में अखबार आदि की फेरी लगाने वाला गरीब बालक प्रवेश परीक्षा में सफल होकर उच्च प्राविधिक कॉलेज में प्रवेश के लिए आमन्त्रित किया गया था। प्रवेश शुल्क जमा करने की राशि उसके पास नहीं थी, परिवार भी इतना सम्पन्न नहीं था। 'स्वधाभावना' का उदय हाता है- कहाँ? उसकी बहिन के हृदय में। वह अपने हाथ के कंगन निकालकर उसकी इस आवश्यकता की पूर्ति करती है। वही विद्यार्थी उत्तीर्ण होकर भारत का मिसाइलमैन बनता है, भारतरत्न बनता है और बनता है भारत का यशस्वी राष्ट्रपति डॉ० ए०पी०जे० अब्दुल कलाम, जिनको विश्व के अनेक देशों ने सम्मानित किया, उनके नाम पर विज्ञान दिवस मनाये, और उन्हें उच्च से उच्चतर उपाधियाँ दीं, और विश्वभर में उनके जन्म दिवस १५ अक्टूबर को माननीय विज्ञानरत्न श्री लक्ष्मण प्रसाद ने नवाचार दिवस के रूप में स्थापित कर उन्हें सुधापथ का पथिक घोषित कर दिया है और चरितार्थ हो उठा मृत्यु से ऊपर उठकर अमरता का लक्ष्य- "मृत्योर्मामृतमगमयेति।"

❑❑

पृष्ठ २ का शेष

कारण है, असत्य नहीं। प्रत्येक मनुष्य को अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये। यह वैदिक सिद्धान्त है। इस हित दृष्टि से यह विचार प्रस्तुत किये हैं। सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ का अध्ययन कर मनुष्य में सत्य व असत्य का निर्धारण करने की शक्ति अर्थात् विवेक उत्पन्न होता है। अतः सर्वहितकारी होने के कारण सबको सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिये। इसी में मनुष्य जाति का हित छिपा है। यह सत्य एवं प्रमाणित है कि श्रीकृष्ण जी योगेश्वर, महात्मा, महाप्रज्ञ, एकपत्नीव्रतधारी, ब्रह्मचारी, सदाचारी, देशभक्त, ईश्वरभक्त, वेदभक्त, सज्जनों के मित्र, दुष्ट-शत्रुहन्ता, केवल एक सन्तान के पिता तथा सत्यनिष्ठ महापुरुष थे।

यद्यपि श्रीकृष्ण हमारे सनातनी बन्धुओं के अराध्य व उपास्य हैं तथापि उनके चरित्र की रक्षा व उनके ऊपर लगाये गये मिथ्या दोषों से उन्हें मुक्त कराने के कारण उनके वास्तविक उत्तराधिकारी यदि कोई हैं, तो वह महर्षि दयानन्द व उनकी संस्था आर्यसमाज है।

पृष्ठ ८ का शेष

प्रतीक्षा[1] करो, जब तक मैं अपना पहिया निकाल लेता हूँ। हे अर्जुन! तुम शूरवीर तथा युद्ध धर्मों को जानने वाले हो। मैं तुम्हारे से किसी प्रकार डरकर ये बातें नहीं कह रहा हूँ, प्रत्युत युद्ध नियमों का पालन करने का आग्रह ही कर रहा हूँ।

श्रीकृष्ण द्वारा कर्ण को फटकार- हे कर्ण! दुर्जन व्यक्ति विपत्ति में भाग्य की निन्दा करते हैं, अपने कुकर्मों की नहीं। अब तू युद्ध[2] धर्म की याद दिला रहा है। उस समय तेरा धर्म कहाँ चला गया था कि जब भरी सभा में रजस्वला द्रौपदी का अपमान किया था? (२) धर्मराज युधिष्ठिर को जब शकुनि ने छल से जुए में पराजित किया था, तब तेरा धर्म कहाँ था! (३)बनवास का पूर्ण समय बीत जाने पर भी पाण्डवों का राज्य वापिस नहीं दिया, उस समय तेरा धर्म कहाँ गया था? (४) जब दुर्योधन ने तुम्हारी सलाह से भीम को विषमिश्रित अन्न खिलाया व सर्पों से डसवाया था, तब तेरा धर्म कहाँ गया था? (५) जब वरणावत नगर में लाक्षा भवन में सोते हुए पाण्डवों को तुमने जलाने का प्रयत्न किया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? (६) भरी सभा में नीच दुःशासन ने जब द्रौपदी का उपहास किया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ था! (७) जब अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को सात महारथियों ने चारों तरफ से घेरकर मारा था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? यदि इन अवसरों पर धर्म की मर्यादा नहीं रही, तो आज धर्म की दुहाई क्यों? श्रीकृष्ण के वचनों को सुनकर कर्ण[3] लज्जित होकर उत्तर नहीं दे सका और सिर नीचे झुका लिया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को संकेत किया कि हे[4] अर्जुन। अब अच्छा अवसर है, कर्ण को दिव्यास्त्रों से घायल कर मार गिराओ। पिछली करतूतों ने अर्जुन के घाव पर नमक का काम किया और वे और तेजी से बाणों की वर्षा करने लगे। प्रतिरोध में कर्ण ने भी ब्रह्मास्त्र का अर्जुन पर प्रयोग किया। अर्जुन ने भी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। कर्ण ने ब्रह्मास्त्र से उत्पन्न अग्नि को वरुणास्त्र चलाकर शमन कर दिया और अर्जुन को किसी तीव्रतम बाण से घायल करके अपने रथ के चक्र को निकालने लगा। अर्जुन की उस समय दयनीय स्थिति थी, किन्तु यदि यह अवसर निकल गया तो फिर कर्ण को पराजित नहीं किया जा सकेगा, श्रीकृष्ण ने यह विचार कर अर्जुन को फिर संकेत किया कि हे अर्जुन[5]। कर्ण जब तक रथ पर नहीं चढ़ जाता है, तब तक तुम कर्ण के सिर को बाण से काट डालो, अन्यथा यह अवसर निकल जायेगा। अर्जुन ने अपने को संभालकर अञ्जलिका नामक भयंकर बाण से कर्ण को लक्ष्य बनाया और उसका सिर काट दिया।

इस प्रकार समयोचित परामर्शों तथा युद्धनीतियों के कारण ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्णादि का वध कराकर विजयी बनाया।

१. भो भोः पार्थ! महेष्वास मुहूर्त्तं परिपालय।
यावच्चक्रमिदं ग्रसतमुद्धरामि महीतलात्।।
२. द. महा. कर्णपर्व. ९१वें अ. के. १-१२ श्लोक।

३. एवमुक्तस्तदा कर्णो.... नोत्तरं किञ्चिदुक्तवान्।।
(महा. कर्ण. ९१ अं.)
४. ततोऽब्रवीद वासुदेवः फाल्गुनं पुरुषर्षभम्।
दिव्यास्त्रेणैव निर्भिद्य पातयस्व महाबलम्।।
५. छिन्द्यस्व मूर्धानमरेः शरेण, न यावदारोहति
वै रथं वषः।। (महा. कर्ण. ९१वां अ.)

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/६/२०१५
भार- ४० ग्राम

सितम्बर 2015

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.........................
ग्राम.........................
डा0 ....
जिला.........................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।